जीवंत आचारांग-
जिनवाणी का झरणा

यानी

पूज्य महात्मा जी म. सा.

प्रकाशक

चम्पकलाल वीरजीभाई महेता,
वर्धमान नगर, हीरजी मिस्त्री रोड़,
रणजीतनगर, जामनगर-३६१ ००४

मूल्य : चिंतन मनन आचरण

✻ नम्र निवेदन ✻

इस पुस्तक की आशातना न हो इसका सभी धर्म प्रेमी श्रावक-श्राविकाओं से नम्र निवेदन है।

प्राप्ति स्थान

चम्पकलाल वीरजीभाई महेता,
वर्धमान नगर, हीरजी मिस्त्री रोड़, रणजीतनगर,
जामनगर-३६१ ००४ ✆ : ५६३४१२

मुद्रकः स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर

चतुर्विंशतिस्तव सूत्र (लोगस्स का पाठ)

(अनुष्टुप् वृत्त)

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे ।
अरहंते+कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली ॥ १॥

(आर्या वृत्त)

उसभमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥ २॥
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीयलसिज्जंस-वासुपुज्जं च ।
विमल-मणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि॥ ३॥
कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च ।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥ ४॥
एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ ५॥
कित्तियवंदिय महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरूग्गबोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु ॥ ६॥
चंदेसु णिम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ ७॥

(हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ ४९३-५०९)

लोगस्स यानी चौवीस तीर्थकरों की स्तुति भाव पूर्वक करने से अनंत कर्मो की निर्जरा होती है। इस स्तुति का अपने घर में सभी पारिवारिकजनों के साथ बैठ कर पठन करें और अपनी आत्मा को कर्मो से हलका बनावें, यही शुभकामना है।

प्रस्तावना

"चंपकभाई! ऐसे संत तो सैकड़ों वर्षो में एक बार मिलते हैं" - एक महान् पुरुष के मुख से ऐसे शब्द सुनने को मिले। जब भगवान् स्वरूप महात्मा जी म. सा. हमारे श्री संघ में (वर्धमान नगर जामनगर) १९९८ (गुजराती संवत् २०५४) के चातुर्मास के दौरान चातुर्मास के ७३ दिन पूर्ण कर एकाएक कालधर्म को प्राप्त हुए तब........

जबरदस्त आघात से स्वस्थ होने के बाद विचार आया कि ऐसी महान् आत्मा को लोग जानें, उनके आदर्श और प्रेरणात्मक जीवन से चतुर्विध संघ परिचित होवें, उनकी वैराग्यमय वाणी को लोग पढ़े, विचारे, चिंतन मनन करे और जीवन में उतार कर आराधक बने, यह अत्यंत जरूरी है....और उस विचार के फलस्वरूप यह पुस्तिका आपके समक्ष प्रस्तुत हुई है।

लगभग १३ वर्ष पहले मेरी जन्म तिथि के दिन मारवाड़ (राजस्थान) में विराजित ज्ञानगच्छाधिपति पूज्य तपस्वीराज श्री चम्पालाल जी म. सा., बहुश्रुत पूज्य प्रकाशचन्दजी म. सा. पंडित मुनि श्री घेवरचन्दजी म. सा. पूज्य महात्मा जी म. सा. आदि संतों के दर्शनार्थ यहाँ के हमारे संघ (वर्धमाननगर-जामनगर) के लगभग १०० श्रावक श्राविकाओं को ले कर गया था। वहाँ पूज्य संत सतियों के आचार (संयम) को देख कर सभी दर्शनार्थी बहुत ही प्रभावित हुए और प्रतिवर्ष जन्म तिथि के दिन श्रावक श्राविकाओं को लेकर ऐसी दर्शन यात्रा निकाल कर दर्शन करने को जाने का निर्णय किया। जो १२ वर्ष तक चालू

रही। दर्शन यात्रा के दौरान जैन धर्म के नियमों का अधिक से अधिक पालन हो इसकी पूरी सावधानी रखी जाती। दर्शन यात्रा में जाते तब पूज्य महात्मा जी म. सा. का हमारे क्षेत्र को चातुर्मास मिले ऐसी विनति करते। आशा बंधती कि चातुर्मास मिलेगा किन्तु किसी न किसी कारण से यह आशा पूर्ण नहीं होती थी। परन्तु योगानुयोग कैसा ? ज्ञानगच्छाधिपति पूज्य तपस्वीराज श्री चंपालाल जी म. सा. पूज्य प्रकाशमुनि जी म. सा. तथा भगवान् स्वरूप पूज्य महात्मा जी म. सा. की असीम कृपा से वि. सं. २०५४ (ई. सं. १९९८) का चातुर्मास हमें प्राप्त तो हुआ किन्तु पूज्य महात्मा जी म. सा. का यह चातुर्मास चरम (अंतिम) चातुर्मास बन गया!!

जिनेश्वर भगवान् की आज्ञा अनुसार संयमी जीवन कैसा होना चाहिये, श्रावक धर्म की समझदारी कैसी होनी चाहिये, इसकी समझ कुछ ही व्यक्तियों को होती है, अन्यथा मिथ्या मान्यताओं की तरफ आकर्षित होकर व्यक्ति प्राप्त मानव भव को खो देता है।

ऐसे संयोगों में पूज्य महात्मा जी म. सा. का आदर्श जीवन, उनकी त्यागमय वाणी तथा चिंतन से श्रावक श्राविकाओं में सच्ची समझ आवे, सभी जीव विराधक बनने से रुक कर आराधक बने ऐसे भावों से पूज्य महात्मा जी म. सा. संसार अवस्था में कैसें दृढ़धर्मी प्रियधर्मी श्रावक थे, अपनी स्वीकार की हुई जवाबदारी का उन्होंने कैसी निष्ठा से दृढ़ता पूर्वक पालन किया तथा कैसा अद्भुत चिंतन उनका था इसकी जानकारी इस पुस्तिका में दी है। विशेष में संयमी जीवन में उनमें विकसित हुए अनेक गुण, उनकी

विशेषताएं उनके संयमी जीवन में व्याख्यान वाचणी में से ग्रहण की हुई अमृतमय वाणी आदि का भी इस पुस्तिका में संकलन किया गया है।

साधक जीवन में "**मरना मंजूर है लेकिन दोष लगाना मंजूर नहीं है**" यह उनका जीवन मंत्र था और स्वयं द्वारा स्वीकार किये हुए इस जीवन मंत्र को आयुष्य के अंतिम श्वांस तक उन्होंने पालन करके दिखाया जिसके हम साक्षी हैं।

पूज्य महात्मा जी म. सा. ने श्रावक रूप में श्रावक धर्म का दृढ़ता से पालन किया और संयम लेने के बाद शुद्ध संयम धर्म का पालन कर ऐसा सुन्दर जीवन जी गये कि उस आदर्श को आँखों के सामने रख कर प्रत्येक व्यक्ति इस पुस्तिका का वांचन-मनन-चिंतन करके अपने जीवन में जो कोई दोष हो या मिथ्या मान्यता हो उसका त्याग करके, सत्य बात को स्वीकार करें और जीवन में उतार कर अपने दुर्लभ मानव भव को सार्थक करे, ऐसी हमारी अंतर की भावना है।

हमारे यहाँ उपाश्रय में प्रतिदिन व्याख्यान के पहले समूह में बड़ी साधु वंदना की प्रार्थना होती थी। पूज्य महात्मा जी म. सा. उस समय अंदर नित्य की स्वाध्याय की जगह पर बैठ कर साथ में बड़ी साधु वंदना गाते थे। रात्रि को प्रतिदिन प्रतिक्रमण के बाद वे सभी संतों के साथ **पुच्छिसुणं** (पूज्य गुणधर भगवंत गुंथित वीर स्तुति) बोलते थे, अतः दोनों प्रार्थनाओं का भी इस पुस्तिका में समावेश किया गया है।

आगम के जानकार पूज्य साधु साध्वी गण और श्रावक-श्राविकाएँ पूज्य महात्मा जी म. सा. को भगवान् की आज्ञा अनुसार शुद्ध संयम का पालन करते हुए देख कर उन्हें

"**जीवंत आचारांग**" कहते थे, अतः इस पुस्तिका का नाम भी "**जीवंत आचारांग-जिनवाणी का झरणा यानी पूज्य महात्मा जी म. सा.**" रखा गया है।

इस पुस्तिका की गुजराती आवृत्ति जनवरी १९९९ में प्रकाशित हुई। गुजरात के बाहर जहाँ भी यह पुस्तिका पहुँची वहाँ से कुछ पत्र आये जिसमें इस पुस्तिका का हिन्दी अनुवाद हो तो गुजराती भाषा नहीं जानने वाले लोग भी इसे पढ़ सके ऐसी विनति थी। आदरणीय सुश्रावक श्रीमान् चन्दनमल जी सा. कोचर त्रिचनापल्ली, श्रीमान् जशवंतलाल भाई शाह, बम्बई आदि प्रमुख श्रावकों की भी ऐसी ही भावना थी।

हमनें इस कार्य के लिए सम्यग्-दर्शन के सह सम्पादक आगम अभ्यासी श्री पारसमल जी चण्डालिया ब्यावर को विनति की और उन्होंने हमारी विनति को सहर्ष स्वीकार कर इस पुस्तिका का हिन्दी में अनुवाद कर दिया। इस शुभ एवं प्रशंसनीय कार्य के लिए मैं उनका अन्तः करण पूर्वक आभार मानता हूँ। कम्पोज किये हुए फार्मो की प्रूफ रिडिंग करने के लिए मैं जामनगर निवासी हरीश भाई पुनातर का भी आभारी हूँ।

इस प्रकार इस पुस्तिका के संकलन, संपादन और प्रकाशन में जिन-जिन धर्मानुरागियों का सहयोग प्राप्त हुआ, उन सभी का मैं हृदय से आभार मानता हूँ।

पुस्तिका में कहीं भी वीतराग देव की आज्ञा विरुद्ध लेखन हुआ हो तो "मिच्छामि दुक्कडं"

जामनगर

वीर संवत् २०२६ **ली. चंपकलाल वीरजीभाई महेता**

दिनांक १-१-२००० **का जय जिनेन्द्र**

इस प्रकाशन के विषय में

मोक्ष-मार्ग के सच्चे पथिक जैन साधु का जीवन (आचार-विचार) कैसा हो इसका वर्णन जैनागमों में विशेष रूप से आचारांग सूत्र में मिलता है। उस वर्णन को पढ़कर कई एक लोगों के मन में विचार उत्पन्न हो जाता है कि आगम कालीन युग में तो इस तरह के उत्तम आचार के पालन करने वाले महात्मा थे, किन्तु क्या अवसर्पिणी के इस पंचम आरे में भी इस तरह का यथावत् उत्तम चारित्र के पालक महात्मा मिल सकते हैं? इसका सकारात्मक उत्तर ज्ञानगच्छाधिपति पूज्य तपस्वीराज श्री चम्पालाल जी म. सा. के सुशिष्य पूज्य जयन्तीलाल जी म. सा. थे। आपकी साधना इतनी उत्तम एवं बेजोड़ थी जिसके कारण आप महात्मा जी म. सा. के नाम से प्रसिद्ध हुए। आप चलते-फिरते जीवंत आचारांग थे। आगमों में जैन साधुओं के लिए जो आचार-विचार वर्णित किया गया है उसी के अनुरूप ही आपने उसका पालन किया। आपको अणु मात्र भी उससे आगे पीछे होना मंजूर नहीं था। उनका प्रति समय उद्घोष रहा कि - "मरना मंजूर है किन्तु संयम में दोष लगाना मंजूर नहीं।" आपमें अनेक चारित्रिक विशेषताएं थी, जिसके कारण वे न केवल ज्ञानगच्छ के बल्कि सम्पूर्ण जैन समाज में जन-जन के श्रद्धा के केन्द्र बनें। जिनवाणी के अनुरूप आपने अपना जीवन बनाकर इस पंचम आरे में चौथे आरे की साधुता को चरितार्थ किया।

जिन्होंने पूज्य महात्मा जी म. सा. के दर्शन किए, उनके मुखारविन्द से जिनवाणी अथवा आगम की वाचणी सुनने का

सौभाग्य मिला वे तो उनके आदर्श साधु जीवन से परिचित है ही। किन्तु जिन महानुभावों को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, उन्हें भी आपके आदर्श जीवन की जानकारी हो इसके लिए आदर्श श्रमणोपासक श्री चम्पालाल वीरजीभाई महेता जामनगर (सौराष्ट्र) जिन्हें पूज्य महात्मा जी म. सा. के अन्तिम चातुर्मास (संवत् १९५५) का लाभ मिला, उन्होंने पूज्य महात्मा जी म. सा. के गृहस्थ एवं आदर्श साधु जीवन का दिग्दर्शन कराने वाली **"जीवंत आचारांग-जिनवाणी का झरना यानी पूज्य महात्मा जी म. सा."** नामक पुस्तिका का गुजराती में प्रकाशन करवा कर धर्म रसिक श्रावक वर्ग में अमूल्य वितरित की।

हिन्दी भाषी धर्म रसिक श्रावक वर्ग का सुश्रावक श्री चम्पकभाई को आग्रह रहा कि इस पुस्तक का यदि हिन्दी में अनुवाद होकर प्रकाशन करवाया जाय तो ज्यादा लोगों को लाभ मिल सकता है। सुश्रावक श्री चम्पकभाई ने हमें इस बात से अवगत कराया। फलतः सुश्रावक श्री पारसमलजी सा. चण्डालिया ने उस गुजराती पुस्तिका का हिन्दी अनुवाद करके साथ ही सामग्री का कुछ विशेष संकलन सम्पादन किया।

उदारमना सुश्रावक श्री चम्पकभाई की भावना इस पुस्तक को पोस्टेज खर्च सहित पाठकों को अमूल्य उपलब्ध कराने की है। वे चाहते हैं कि पूज्य महात्मा जी म. सा. के आदर्श जीवन से पाठक बन्धु प्रेरणा लेकर अपने में त्याग-प्रत्याख्यान बढ़ावे। समाज आपकी इस उदारता के लिए आभारी है।

पाठक बन्धु इसका अधिक से अधिक लाभ उठावें। पुस्तिका की आशातना न हो इसका पाठक बन्धु विशेष ध्यान रखने की कृपा करे। **- नेमीचन्द बांठिया "उपाध्यक्ष"**

श्री अ. भा. सुधर्म जैन सं. रक्षक संघ, जोधपुर

विषयानुक्रमणिका

१. संक्षिप्त जीवन परिचय — १३

२. मोक्षमार्ग के अद्वितीय साधक — १४-३८

  1. आदर्श गृहस्थ जीवन — १५

  2. अध्यक्षमहोदय नुं भाषण — २४

  3. आपकी दीक्षा — ३७

३. पू० महात्मा जी म. सा. का संयमी जीवन — ३९

४. आदर्श गुरु के आदर्श शिष्य (चारित्रिक विशेषताएं) — ४३

५. जामनगर का चरम चातुर्मास — ७५

६. पूज्य महात्मा जी म. सा. का अंतिम व्याख्यान — ८०

७. पूज्य महात्मा जी म. सा. की अंतिम वांचना — ८३

८. पूज्य महात्मा जी म. सा. की अंतिम साधना — ८९

९. चिंतन के द्वार से — ९३

१०. पू० महात्माजी म. सा. के चातुर्मास — १४३

११. पू०महात्मा जी म. सा. के प्रवचन से — १४४

१२. पूज्य महात्मा जी म. सा. की अमृतवाणी — १५२

१३. अब हमें क्या करना है? — १६९

१४. दया की दिव्यता — १७९

१५. वस्तु शुद्धि के लिए जागृत रहें — १८३

१६. बड़ी साधु वंदना का महत्त्व — १९०

१७. बड़ी साधु वन्दना — १९३

१८. लघु साधु वन्दना — २०३

१९. पुच्छिंसुणं (वीरत्थुई) — २०४

पूजा संस्कार केन्द्र का परिचय

❋ श्री वर्द्धमान स्थानक जैन मंडल की स्थापना के बाद वीरजी भाई रायचंद स्था. जैन उपाश्रय ६ माह मे तैयार हो गया और प्रथम चातुर्मास पूज्या लाभुबाई महासती जी का मिला।

❋ चातुर्मास में अच्छी धर्म साधना शुरू हुई और अच्छी संख्या में धर्मानुजन लाभ लेने लगे।

❋ आवश्यक सूत्र आदि का ज्ञान कराने के लिए जैन शाला का शुभारंभ किया गया। स्कूल के टाईम के अनुसार दिन में दो बार समय निर्धारित किया गया। चातुर्मास में तो जैन पाठशाला का उत्साह प्रेरणादायक था किन्तु शेषकाल में भी उत्साह में कमी दिखाई देने लगी।

❋ नये प्रयोग के रूप में पूजा संस्कार केन्द्र शुरू किया जिसमें दो पीरियड (कालांश) अंग्रेजी, गणित के तथा एक पीरियड जैन धर्म का रखा गया। बालकों की संख्या में वृद्धि होवे अतः कोचिंग क्लास का प्रलोभन दिया गया।

❋ इनामी योजना शुरू की गयी और सामायिक कंठस्थ करने वाले को रू० ५०) प्रतिक्रमण कंठस्थ करने वाले को रू० १००) का पुरस्कार देने की घोषणा की गयी। प्रतिक्रमण याद करने वाले के फोटो "जैन क्रांति" मासिक में प्रकाशित किये गये। जिससे उत्साह में वृद्धि हुई फलस्वरूप केवल बालकों के लिए ही नहीं अपितु सभी उम्र वालों के लिए यह योजना चालू रखी गयी।

❋ शुद्ध उच्चारण पूर्वक सबके सामने सामायिक के पाठ सुनाने वाले को पुरस्कार राशि बढ़ा कर रू० ७५) देने की घोषणा की गयी।

❋ इसके अलावा लोगस्स, चउवीसत्थव, पुच्छिंसुणं तीर्थंकर भगवान् की स्तुति आदि कार्यक्रमों में जो भाग्यशाली आत्माएं श्रद्धा पूर्वक भाग लेगी वे समकित का स्पर्श एवं कर्मों की निर्जरा करेगी।

जय जिनेन्द्र! **पूजा संस्कार केन्द्र**

चंपकलाल वीरजी भाई मेहता वर्धमान नगर

हीरजी मिस्त्री रोड़ रणजीतनगर, जामनगर

हे आत्मन्!

☆ ऐसा कोई पाप नहीं, जो तू ने नहीं किया।

☆ ऐसा कोई दुःख नहीं, जो तू ने नहीं सहा।

☆ ऐसी कोई गति नहीं, जहाँ तू नहीं रहा।

☆ ऐसी कोई योनि नहीं, जहाँ तू ने भ्रमण नहीं किया॥

❁ ❁

☆ ऐसा कोई काम नहीं, जो तू ने नहीं किया।

☆ ऐसा कोई भोग नहीं, जो तू ने नहीं भोगा।

☆ ऐसा कोई संबंध नहीं, जो तू ने नहीं जोड़ा।

☆ ऐसा कोई पाप कर्म बंध नहीं जो तू ने नहीं किया।

✢ ✢

☆ ऐसा कोई कषाय नहीं, जो तू ने नहीं किया।

☆ ऐसा कोई विषय नहीं, जो तू ने सेवन नहीं किया।

☆ ऐसा कोई आरंभ नहीं, जो तू ने नहीं किया।

☆ ऐसा कोई परिग्रह नहीं, जो तू ने एकत्रित नहीं किया।

हे जीव!

तेरी भूतकाल की यातनाओं के विषय में क्या कहना......

दीर्घकालीन दु:ख अंधकार के बीच भद्रता और विनीतता तथा कदाचित् एकाधिक जिनवचन श्रवण का दीप प्रकटाया और उसके प्रकाश में यह परम दुर्लभ मानव भव हाथ आ गया।

अब दीप से दिवाकर बनना तेरे हाथ में है, चल भूतकाल की फरियाद न करते हुए भविष्य काल की तैयारी कर.............

हे आत्मन्!

साधना करना अर्थात् सिद्धत्व की तैयारी करना।

जीवन जीना अर्थात् अमरता की तैयारी करना।

इस सिद्धत्व एवं अमरता की शुरूआत हलुकर्मी (सरल) बनने से कर, सम्यग्-दर्शन पाने से कर, सुदेव सुगुरु और सुधर्म के प्रति भक्ति से कर, मोक्ष मार्ग की आराधना से कर, जिनशासन में आसन प्राप्त करने से कर.....

तीर्थ में आने वाले तिरे नहीं, यह कदापि संभव नहीं अत: जिनशासन में शक्ति लगा। क्योंकि -

भव मिला है भगवान् बनने के लिए।
तन मिला है तिरने के लिए
शरीर मिला है सर्वज्ञ बनने के लिए
जीवन मिला है जिनेश्वर बनने के लिए
मौका मिला है मोक्ष जाने के लिए

महात्मा पूज्य श्री जयन्तीलाल जी म. सा.

का

संक्षिप्त जीवन परिचय

पिताजी - श्री कस्तूरचन्द जी मश्करिया

माताजी - श्रीमती जवेर बहन

जन्म स्थान - चूडा (सौराष्ट्र)

जन्म तिथि - दिनांक २१-२-१९२५

व्यवसाय स्थान - माटूंगा (बम्बई)

दीक्षा स्थान - धार (मध्य प्रदेश)

दीक्षा तिथि - दिनांक ८-२-१९७३

दीक्षा पर्याय - २५ वर्ष ६ महिना ९ दिन

कालधर्म - दिनांक १७-१-९८
(जामनगर-सौराष्ट्र)

आयु - ७३ वर्ष ६ महिना लगभग

ख्याति - करण और चरण दोनों की
उत्कृष्ट आराधना से
महात्मा जी म. सा.
के नाम से प्रसिद्ध

मोक्ष मार्ग के अद्धितीय साधक

जिन शासन गौरव

महात्मा पूज्य श्री जयंतीलाल जी म. सा.

स्थानकवासी परम्परा में आई विकृतियों को समाप्त कर विशुद्ध परम्परा को पुनः स्थापित करने वाले धर्मप्राण लोंकाशाह के बाद निर्ग्रन्थ परम्परा की जो विशुद्ध परम्परा स्थापित हुई थी। उस विशुद्ध परम्परा का पालन, पोषण, रक्षण एवं प्रचार-प्रसार करने में अनेक महापुरुषों का योगदान रहा, जिससे स्वनाम धन्य पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म. सा., पूज्य धर्मदास जी म. सा., पूज्य धर्मसिंह जी म. सा., पूज्य जयमल जी म. सा. आदि अनेक महापुरुष निर्ग्रन्थ परम्परा के उज्ज्वल नक्षत्र हो गए। उसी उज्ज्वल परम्परा में पूज्य ज्ञानचन्दजी म. सा. की सम्प्रदाय में जिनागमों के तलस्पर्शी विद्वान्, सिद्धान्तों के सरल व्याख्याता, सरलता, विनम्रता, सेवाभावी की प्रतिमूर्ति उत्कृष्ट क्रिया के पालक श्रमण श्रेष्ठ बहुश्रुत गीतार्थ पंडित रत्न पूज्य श्री समर्थमल जी म. सा. भी अपने समय के अद्धितीय महापुरुष हो गए।

आपका आगमों का परिशीलन, तलस्पर्शी अवगाहन और सूक्ष्म विश्लेषण, विवेचन सुनकर अनेक आगम मर्मज्ञ भी चकित रह जाते थे। इतने विशिष्ट ज्ञानी होने पर भी आप में प्रसिद्धि की अंश मात्र भी चाह नहीं थी। इसी कारण लगभग चौतीस वर्ष राजस्थान के एक कोने खीचन में गुरु सेवा में

विराजे रहे। समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग आपके ज्ञान एवं दर्शन से वंचित रहा। सोजत-भीनासर श्रमण सम्मेलनों एवं जोधपुर संयुक्त चातुर्मास के प्रसंग के निमित्त से आपकी प्रसिद्धि हुई तो रत्नों के पारखी जौहरी खीचन पहुँचने लगे। उन्ही रत्नों के पारखी जौहरियों में बम्बई निवासी धर्मप्राण, प्रशान्त आत्मा, त्यागमूर्ति, आदर्श श्रमणोपासक श्री जयंतीलाल भाई मश्करिया भी थे। जिन्हें सम्यग्-दर्शन पत्रिका के माध्यम से स्वर्गीय गुरुदेव श्रमण श्रेष्ठ बहुश्रुत श्री समर्थमल जी म. सा. से परिचय हुआ। फिर तो आप प्रतिवर्ष गुरुदेव के दर्शनार्थ पधारते रहे। श्रमण श्रेष्ठ का उत्तम ज्ञान, दर्शन, चारित्र आपके आकर्षण का कारण बना। नतीजतन आपने गुजरात की समस्त सम्प्रदायों को छोड़, विलासना मय बम्बई सरीखी महानगरी, पारिवारिक मोह, अति सुकोमल शरीर आदि का ममत्व त्याग कर एकान्त आत्म साधना के उद्देश्य को लेकर अति कठोर क्रिया पालक सम्प्रदाय का चयन किया।

आदर्श गृहस्थ जीवन

आप श्री का जन्म सौराष्ट्र के चूड़ा नगर में दिनांक २१-२-१९२५ को आदर्श श्रमणोपासक श्री कस्तूरचन्द जी मश्करिया एवं रत्नकुक्षि धारिणी मातुश्री श्री जवेर बहन के यहाँ हुआ। छोटी उम्र में ही पिताजी सुश्रावक श्री कस्तुरचन्द-भाई का स्वर्गवास हो गया। तीन भाई, पांच बहनें तथा धर्मनिष्ठ माता जवेरी बहन के साथ चूड़ा गांव में धार्मिक संस्कारों के साथ आपका बचपन बीता।

महापुरुषों के जीवन में प्रायः एक विशेषता होती है कि वे जिस क्षेत्र में जिस कार्य की जवाबदारी लेते हैं उसका निष्ठा और समर्पणता पूर्वक पालन करते हैं। पूज्य महात्मा जी म. सा. में बचपन से ही यह गुण देखा गया। चूड़ा में रहते हुए उन्होंने घर छोड़ कर महात्मा गांधी के साथ सत्याग्रह में भाग लिया। खादी पहनने लगे और नारे लगाने लगे कि - 'स्वराज्य ही हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, हम झुकेंगे नहीं ' आदि किन्तु जब वे गुरु भगवंतों के संपर्क में आये, ज्ञान ध्यान सीखा तो उनका जीवन ही बदल गया। उन्हें समझ में आ गया कि सच्चा स्वराज्य क्या है? और उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील बन गये।

चूड़ा में मैट्रिक तक की पढाई करने के बाद कौटुम्बिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए व्यापारार्थ आप बम्बई आये। बम्बई में भी एक नीतिवान् न्यायी और प्रमाणिक व्यवसायी के रूप में सम्मान प्राप्त किया।

आप का परिवार शुरू से ही धार्मिक विचारों से ओतप्रोत था। फलतः आपको उत्तम धार्मिक संस्कार माता-पिता आदि से विरासत में ही मिले। उत्तम संस्कारित परिवार होने की वजह से आपकी बहिन श्री लीलाबहन एवं भाणजी सुनन्दा बहन गुजरात में दरियापुरी सम्प्रदाय में दीक्षित हुई। आपकी एक वहिन श्रीमती मंगला बहन है, जो श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ के वर्तमान अध्यक्ष श्री जशवन्तलाल भाई शाह की धर्म सहायिका है। आप भी दृढ़धर्मी प्रियधर्मी श्राविका रत्न है। इन्होंने भी अपनी दो-दो

पुत्री रत्नों को ज्ञानगच्छ में दीक्षित कर रखी है। जो पूज्या तृप्ति जी एवं प्रीतिजी महासती जी के नाम से जिन शासन की प्रभावना कर रही है।

आप खुद के परिवार में मात्र तीन सदस्य थे। स्वयं धर्म सहायिका श्रीमती लाभु बहन एवं एक मात्र पुत्री भावना बहन 'बी. ए.' तीनों ही आत्माएँ धर्म रसिक त्याग वैराग और संवेग भावों में रंगी हुई थी। जिन्होंने आगे चलकर ज्ञानगच्छ में दीक्षा ग्रहण की, जिस परिवार में तीन सदस्य हो और तीनों ही सपरिवार दीक्षित हो, जिनकी सगी बहन और तीन-तीन भानजियाँ भी जिन शासन को समर्पित हो, वह परिवार कितना धार्मिक एवं त्याग वैराग्य से रंगा हुआ होगा, इसका महज अन्दाज लगाया जा सकता है।

गृहस्थावस्था में भी आपको आगमों का गहन अभ्यास था। अतएव वर्षों तक आपने सम्यग्-दर्शन पत्रिका के गुजराती विभाग का सम्पादन किया। आपके लेख सचोट एवं मार्मिक होने के साथ-साथ वीतरागता एवं मधुरता से अनुरंजित होते थे। वैसे ही गुजराती भाषा मीठी और फिर उस पर आप वीतरागता का पुट लगा देते तो उन लेखों में मधुरता झरने लगती, जो पाठकों के हृदय को सीधा छू लेती थी। दूसरा एक कारण ओर था कि आपके रोम-रोम में वीतराग वाणी समाई हुई थी। फलतः जो भी शब्द आपके मुंह से निकलते अथवा जो भी आप लिखते उसमें वीतरागता का झरना प्रवाहित होता रहता था।

आप गृहस्थावस्था में दृढ़ मनोबली थे। वह गुण संयम

अंगीकार करने पर दृढ़तम बन गया। जब आप गृहस्थ थे तो आपको दमे की शिकायत थी। इसकी वजह से आपको कुछ गोलियाँ नियमित रोजाना लेनी पड़ती थी। बिना उन गोलियों के लिए आपका काम नहीं चलता था। एक बार जब स्वर्गीय गुरुदेव जयपुर विराजते तो आप वहाँ दर्शनार्थ पधारे तथा अपने संयम लेने की भावना जाहिर की साथ ही यह भी बताया कि मुझे दमे की शिकायत है। अतएव नियमित रोजाना दवाई की गोलियाँ लेनी पड़ती है। प्रत्युत्तर में गुरुदेव ने फरमाया कि - संयमी जीवन में यह संभव नहीं है। आपने गुरुदेव के उत्तर पर चिन्तन किया कि "एक गोली मेरे संयम में बाधक बनती है, मुझे ऐसी संयम बाधक गोली को नहीं लेनी है।" उसी समय आपने दृढ़ संकल्प के साथ पूज्य गुरुदेव से दवाई की गोलियाँ लेने का त्याग कर दिया। जिसे ताजिन्दगी अक्षुण्ण रूप से निभाया। संयम ग्रहण करने पर तो निर्दोष दवाई तक का सेवन नहीं किया। त्याग करने के पश्चात् आपकी वह दमे की शिकायत ऐसे शांत (छूमन्तर) हो गई, जिस प्रकार अनाथी मुनि के संकल्प से उनके आँखों और शरीर की वेदना शान्त हुई। इलाज करने वाला डॉक्टर स्वयं आश्चर्यन्वित है कि वह व्यक्ति बिना गोली के कैसे जीवित रह सकता है।

इसके अलावा भी आपका गृहस्थ जीवन अनेक गुणों से सुशोभित था। जिस प्रकार आगमों में आनन्दादि उत्तम श्रमणोपासकों का वर्णन आता है, उसी प्रकार आप भी गृहस्थावस्था में आदर्श श्रमणोपासक थे।

आप व्यापार के निमित्त बम्बई महानगरी में पधारे पर यहाँ पधार कर भी आपने सांसारिक और व्यावसायिक कार्यो को जलकमलवत् निरलिप्त-रूक्ष भाव से किया। आपका अधिकांश समय धर्म-साधना आराधना, ज्ञानध्यान, तप संवर में ही व्यतीत होता था। संसारावस्था में भी आप जयणा रख कर बोला करते यानी खुले मुंह नहीं बोलते थे।

आप में आगमों में वर्णित **"अट्ठिमिंज पेमाणु रागरत्ता"** वाली युक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती थी। यानी आपकी हड्डी और हड्डी की मिज्जा में जिन धर्म रंगा हुआ था। इसी कारण आप शुद्ध साध्वाचार और श्रावकाचार के प्रबल समर्थक थे। जैनत्व में घुसे विकारों एवं आचारों की अशुद्धता से आपको बड़ी भारी पीड़ा होती थी। आप शिथिलाचारियों, आगम विपरीत प्रवृत्तियाँ करने वालों एवं उनका पक्ष लेने वालों, उत्सूत्र प्ररूपणा करने वालों, आगमों का मनमाना अर्थ कर अपने दोषों को छिपाने वालों के कट्टर विरोधी थे। कॉन्फ्रेंस की कई मीटिंगों में आपने इन मुद्दों का खुलकर विरोध भी किया। जब इन्हें सम्यग्-दर्शन के माध्यम से ज्ञात हुआ कि स्थानकवासी परम्परा में बढ़ती विकृतियों को रोकने एवं हमारी पुरातन संस्कृति की रक्षा के लिए एक अलग संगठन स्थापित हो रहा है, तो आपको बड़ी प्रसन्नता हुई और आप श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ की स्थापना यानी १९५६ से ही इस संघ से जुड़ गए।

आप संघ से मात्र जुड़े ही नहीं बल्कि सक्रिय कार्यकर्त्ता के रूप में संघ की प्रत्येक मीटिंग में हाजिर रह कर संघ की

समस्त गतिविधियाँ को आगे बढ़ाने में सहयोगी रहे। आपने अथक प्रयत्न करके बम्बई महानगरी में संघ की दो कार्यकारिणी मीटिंग का सफल आयोजन किया, जिसमें संस्कृति रक्षण हेतु अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गये।

आप संस्कृति रक्षक संघ के स्तम्भ थे। जिस प्रकार आदरणीय माणकलाल जी सा. एडवोकेट, श्रीमान् रतनलाल जी सा. डोशी दबंग, निडर, निर्भिक वक्ता थे, उसी भांति आप भी निडरता के साथ संस्कृति की रक्षा हेतु आगम पक्ष प्रस्तुत करने में कभी पीछे नहीं रहे।

श्री अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स की जनरल सभा दिनांक २४-२५ सितम्बर १९६० को बम्बई में सम्पन्न हुई। उसमें हमारे संघ (अ. भा. सा. जैन संस्कृति रक्षक संघ) एवं सम्यग्दर्शन पत्र पर आक्षेप लगाते हुए इसे राग-द्वेष वर्धक, श्रमण संघ में फूट के बीज बोने वाला बताते हुए रोष पूर्ण शब्दों में इसके विरुद्ध निन्दा प्रस्ताव पारित करने हेतु रखा गया। कान्फ्रेन्स के दिग्गज पदाधिकारियों ने इसके समर्थन में अपने-अपने विचार रखे। सभी के विचार सुनने के पश्चात् आदरणीय जयन्तीलाल भाई मश्करिया ने जो इसका उत्तर दिया वह मार्मिक होने के साथ आपकी जिनागम के प्रति दृढ़ श्रद्धा, शुद्धाचरण एवं आत्मबल को उद्घाटित करता है। साथ ही शिथिलाचारियों एवं श्रद्धाविहीन को खुली चुनौती देने वाला है। एक तरफ सम्पूर्ण कान्फ्रेन्स एवं उनके दिग्गज पदाधिकारी दूसरी ओर मात्र आदरणीय जयन्तीलाल भाई मश्करिया और उनके एक दो साथी। पर दृढ़ आत्मबली एवं

सत्य के पक्षधरों के सामने कांफ्रेन्स के समस्त दिग्गजों की एक भी न चली और हमारे संघ और सम्यग्दर्शन के विरुद्ध निंदा प्रस्ताव पारित करने का उनका मंसूबा मन का मनमें ही रह गया। यानी ठहराव प्रस्ताव पारित न कर सके। पढ़िए श्रीमान् जयन्तीलाल भाई मश्करिया का उद्बोधन-

"क्या आप चाहते हैं कि कान्फ्रेन्स धर्म विरुद्ध कार्य करती रहे और शिथिलाचारी तथा श्रद्धा विहीन साधु स्वेच्छाचार चलाते रहे। आप सब आगम विरुद्ध कार्य करते रहे और उसे हम चुपचाप स्वीकार करले? जहां बुरे कार्य होते हैं, वहां बुरे को बुरा बताया जाय तो वह ऐक्यता तोड़ना नहीं, किन्तु दोषों से बचाना है। क्या कान्फ्रेन्स यह चाहती है कि भले ही वह यथेच्छ प्रवृत्ति करे और श्रमण संघ में शिथिलाचारी और श्रद्धाविहीन लोग रहे, परन्तु संगठन रहना ही चाहिए?

हमारा संघ सत्य एवं सूत्र सिद्धांत के अनुसार बात बतावे, उस पर कुछ भी विचार नहीं करते, हमे द्वेषी बताकर हम पर खोटे और गंदे आक्षेप लगाए करना, क्या यही प्रस्तावक महानुभाव और कांफ्रेन्स का विचार है?

मुझे कहने दीजिये कि आगमों को एक तरफ डालकर और सुश्रद्धा की उपेक्षा करके जैसे तैसे खरे खोटे का संगठन करना ही आपनी नीति रहेगी तो आपकी यह कांफ्रेन्स जीवित नहीं रह सकती किन्तु मृत कान्फ्रेन्स बन जावेगी।"

अगस्त १९६१ में संघ की कार्यकारिणी सभा का आयोजन बैंगलोर में रखा गया। वहाँ संघ के विरोधी तत्त्वों ने

काफी गलत प्रचार-प्रसार कर उग्रता का वातावरण बना रखा था। यहाँ तक कि वहाँ विराजित श्री हीरालाल जी म. सा. ने खुले व्याख्यान में संघ के लिए निम्न शब्दावली का प्रयोग कर संघ का प्रतिकार किया।

"श्रमण संघ को सहयोग नहीं दिया जाता हो, तो न सही, पर निन्दक तो नहीं बनना चाहिए, न ऐसे कार्य करने चाहिए, जिससे श्रमण संघ बदनाम हो। शास्त्र में कटु सत्य को भी मिथ्या कहा है। सम्प्रदायवाद बुरा है। सबसे प्रेम एवं सहयोग का व्यवहार चाहिए। आदि

व्याख्यान समाप्ति पर श्रीमान् जयंतीलाल भाई ने इसका जो संक्षिप्त प्रत्युत्तर दिया वह कितना मार्मिक था, वह पाठक पढ़ें

"धर्म नुं मूल सम्यग्दर्शन छे। सम्यग्दर्शन ज्यां न होय त्यां धर्म पण नथी होतो। जिनेश्वर भगवन्त नो मार्गज सर्वश्रेष्ठ छे। आराधना लायक छे। बाकी बधा मार्गो सम्यग्दृष्टि ने माटे स्पर्श करवा लायक नथी। अमे सत्य ने सत्य अने असत्य ने असत्य कहीओ छिओ, खरा ने खरुं अने खोटा ने खोटुं कहेवुं अे कोई निन्दा नथी पण यथार्थ समझण छे, हीरा ने हीरो अने काच न काच कहेवुं अे तो विवेक छे-यथार्थ समझण छे, सत्य नो आदर छे अेने निंदा कहेवी व्याजबी नथी। अमारो संघ जिनेश्वर भगवंत ना मार्गनोज अनुरागी छे। केटलाक साधुओ जिनेश्वर भगवंत ना मोक्षमार्गनी उपेक्षा करी संसार ने स्वर्ग बनाववानी वातो करे छे, अे कांई साधुता छे? जिनेश्वर

भगवंत ज्यारे संसार त्याग नो उपदेश करे छे, त्यारे आज ना साधुओ त्याग प्रत्ये अणगमो राखी संसार सुधारवानी अने संसार ने स्वर्ग बनाववानी वातो चलावे छे। अे जोइने खरेखर खेद थाय छे।

तुंगीया नगरी ना श्रावको ज्यारे आपसमां मलता त्यारे ऐक बीजाने कहेता के -

"अयमाउसो ! णिग्गंथं पावयणं अट्ठे अयं परमेट्ठे, सेसे अणट्ठे"

अर्थात् - हे आयुष्मान् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य छे, अेज परमार्थ छे, बाकी बधुं अनर्थ छे, क्यां ते वखत ना श्रावको ना आवा भावो अने क्यां आजना साधुओना वचनो। सोचो, समझो अने भगवान ना वचनो ना आराधक बनो। इत्यादि।"

आपके उक्त उद्बोधन का सभा में इतना अच्छा असर हुआ कि फिर तो विरोध करने वाले भी संघ की मीटिंग में उपस्थित हुए।

आप संघ की प्रत्येक मीटिंग में उपस्थित रह कर अपनी त्याग वैराग्य पूर्ण मधुर वाणी से संघ की गतिविधियों के प्रचार प्रसार में प्रमुख सहयोगी रहे। परिणाम स्वरूप आपके व्यक्तित्व, त्यागमय जीवन, आगमों के गहन अभ्यास, संस्कृति रक्षा की प्रबल अभीप्सा के कारण से प्रभावित हो कर संस्कृति रक्षक संघ की बागडोर १९६९ में आपके सशक्त हाथों में सौपी गई यानी आपको श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ का अध्यक्ष बनाया गया,

जिसका आपने संयम अंगीकार करने तक पूर्ण तत्परता से निर्वहन किया।

आपकी वाणी त्याग, वैराग्य से ओतप्रोत होने के साथ उसमें इतना मीठास, ओज एवं जनाकर्षण होता कि बिना ध्वनि प्रसारण यंत्र के भी आपको पांच छह हजार की जनमेदिनी आसानी से सुन लेती। आपके अध्यक्ष निर्वाचित होने के पश्चात् संघ का अधिवेशन सनवाड़ (फतहनगर) में रखा गया जहाँ लगभग पांच छह हजार की जनमेदिनी उपस्थित थी। आप ज्यों ही बोलने के लिए खड़े हुए सभा में एक दम सन्नाटा छा गया यानी "पीन ड्राप साइलेंश" वाली स्थिति बन गई। लोगों ने पूर्ण शान्ति और आत्मीयता से आपका प्रेरक उद्‌बोधन सुना। उद्‌बोधन कितना मार्मिक था, आपकी आगम के प्रति कितनी निष्ठा, पुरातन संस्कृति की रक्षा के प्रति आपके मन में कितनी ललक थी वह इस उद्‌बोधन से स्पष्ट होती है।

श्रीमान् अध्यक्ष महोदयनुं भाषण

"धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं णमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो॥"

सुज्ञ बन्धुओ अने माताओ !

आ आपणा अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ नुं त्रीजुं अधिवेशन छे। पहेलुं अधिवेशन श्रीमान् धींगडमल जी साहेब तथा अन्य धर्म बंधुओना निमंत्रण थी जोधपुर शहेर मां थयेल हतुं ते अधिवेशन मां ज आपणा संस्कृति रक्षक संघ नी स्थापना करवा मां आवी हती। बीजुं

अधिवेशन श्रीमान् किशनलाल जी साहेब मालु अने श्री खीचन संघ ना निमंत्रण थी खीचन शहेर मां थयुं हतुं। अने आजे आ त्रीजुं अधिवेशन श्री सनवाड संघ ना भावभर्या निमंत्रण थी सनवाड़ शहेर मां थयुं छे।

बन्धुओ ! आपणो संघ भगवान् तीर्थंकर देव नी आज्ञा अनुसार चालवा वालो संघ छे। तीर्थंकर देव नी आज्ञा अने वचनो ऊपर आपणा संघ ने सम्पूर्ण श्रद्धा छे, प्रतीति छे, रुचि छे। आपणो संघ तीर्थंकर भगवन्त नी आज्ञा ने आगल करीनेज चाले छे। तीर्थंकर भगवंत जे चतुर्विध संघ नी स्थापना करे छे, अे चारे तीर्थ साधु साध्वी श्रावक अने श्राविका अे चारेनुं अेज लक्ष्य होय छे, अेज उद्देश होय छे के आपणे जिन आज्ञा नुं पालन करीने मोक्ष ना शाश्वता सुखो प्राप्त करीअे। आपणा संघ नो पण अेज उद्देश छे, अेज लक्ष्य छे के आपणे बधा पण जिन आज्ञा अनुसार संसारना समस्त दुःखोनो अन्त करीने मोक्ष ना शाश्वता सुखो प्राप्त करीअे। आपणा संघ नी एज प्रज्ञा छे, अेज संज्ञा छे, अेज मत छे, अेज मन्तव्य छे अने अेज श्रद्धा छे के आजे भारत भर मां सर्व श्रेष्ठ जो कोई पण धर्म होय तो ते आपणो शुद्ध स्थानकवासी जैन धर्मज छे। आपणो आ धर्म सर्वज्ञ कथित छे। अन्य धर्मों छद्मस्थना कहेला छे। ते धर्मो मां पंचमहाव्रत, पांच समिति, त्रण गुप्ति, छकाय, छ द्रव्य अने नवतत्त्व नुं यथार्थ स्वरूप नथी। ते धर्मो ना पालन थी कदाच स्वर्गना सुखो तो मेलवी शकाय छे परन्तु ते धर्मो ना पालन थी संसारना समस्त दुःखो नो अन्त करीने मोक्षना शाश्वता सुखो प्राप्त करी शकाय तेम नथी अने जैन धर्म ना

अन्य फिरकाओ, तेओ माटे पण अेटलुंज कहेवानुं छे के भगवान् तीर्थकर देवनो उपदेश अेवो कदापि न होय के मारा माटे अथवा मारी मूर्ति माटे छकाय जीवों नी हिंसा के विराधना करो तेमा वांधो नहि। भगवान् महावीर स्वामी आदि सर्व तीर्थकरो नो अेज उपदेश छे के "हे भव्यो। कोई पण प्राणी, भूत, जीव के सत्त्व नी हिंसा करशो नहि, तेमनी विराधना करशो नहि, तेमना प्रत्ये दया राखजो अनुकम्पा राखजो अने तेमनी रक्षा करजो। ज्यां हिंसा छे, ज्यां आरंभ समारंभ छे त्यां दया नथी, त्यां धर्म नथी।"

तो बन्धुओ ! आवो सर्वश्रेष्ठ शुद्ध स्थानकवासी जैन धर्म आपण ने मल्यो छे। ते आपणुं महान् सौभाग्य छे। आ धर्म मलवा बदल आपणे आपणी जातने महान् भाग्यशाली समझवी जोइअे। बन्धुओ, बधुं मली शके छे, संसारना भौतिक सुखो पण मली शके छे, परन्तु शुद्ध जैन धर्म मलवोअे तो महान् दुर्लभ छे। कहयुं पण छे -

"लब्भंति विउला भोए, लब्भंति सुर संपया।
लब्भंति पुत्तमित्तं च, एगो धम्मो न लब्भइ॥"

कहेवानो आशय अेज छे के आपणा मोटा भाग्य विना अे मली शकतो नथी। आवा आपणा परम पवित्र शुद्ध स्थानकवासी जैन धर्म मां पण केटलाक वखत थी घणीज विकृति आवी गई छे। आगमज्ञान लुप्त थतु जाय छे। मोटा भागना लोको द्रव्य क्षेत्र काल भावना नामे जन प्रवाह मां खेंचाई रह्या छे। आपणा समाज ना केटलाक साधुओ अने अग्रगण्य नेताओ पण भौतिकवाद नी असर नीचे आवी गया

छे। तेओ ने मन मोक्ष मार्ग नी साधना गौण छे अने भौतिकवाद नी साधना मुख्य छे।

बन्धुओ ! मोक्षमार्ग शुं छे ? मोक्षमार्ग नी शुरूआत सम्यग्-दर्शन थी ज छे। निश्चय थी सम्यग्दर्शन ७ प्रकृतिना क्षय क्षयोपशम के उपशम थी थाय छे अने व्यवहार थी सुदेव सुगुरु अने सुधर्म तेमज मोक्ष मार्ग नी श्रद्धा प्रतीति अने रुचि करवी, तेनुं मंडन करवुं-तेनी स्थापना करवी तेमज कुदेव कुगुरु अने कुधर्म तेमज संसार मार्ग नुं, असत्यमार्ग नुं खंडन करवुं ते छे। बंधुओ ! सत्यमार्ग नुं स्थापन करवुं, तेनुं मंडन करवुं अने असत्यमार्ग नो निषेध करवो ए जिनशासन मां तो एक महान गुण, शासन नी प्रभावना अने तीर्थकर नाम-गोत्र बांधवानुं कारण मनाय छे ज्यारे आजे आपणा समाज नो मोटो भाग तेने ईर्ष्या, निन्दा अने द्वेष तरीके गणे छे। सोना ने सोनुं अने पित्तल ने पित्तल कहेवुं ए निन्दा नथी। सम्यग्दृष्टि तो जेवुं वस्तुनुं स्वरूप होय तेवुंज तेने समझे छे। भगवान् ना केटलाक साधुओ वादी हता अने असत्य वादनुं नीरसन करवामां निपुण हता। अने मंडुक आदि श्रावको पण सत्य सिद्धांत द्वारा अन्ययूथिको ने निरुत्तर करवामां कुशल हता। भगवाने भरसभामां स्वमुखे एमनी प्रशंसा करी।

बंधुओ! आगम ज्ञान थी अनभिज्ञ लोको गमे तेम कहे पण तेथी करीने आपणे सत्य मार्ग छोडाय नहि, कारण आपणे समझीए के उत्सूत्र प्ररूपणा जेवुं कोई पाप नथी अने आगम अनुसार सत्य प्ररूपणा जेवो कोई धर्म नथी। उत्सूत्र प्ररूपणा करतां कदाच आखुं जगत

आपणा पगमां पडे, आपणी प्रशंसा करे अने आपणु सन्मान अने बहुमान करे, पण तेनी कीमत अेक कोडीनी पणं नथी अने आगम अनुसार सत्य प्ररूपणा करतां कदाच मरणांत कष्ट आवी पडे तो पण ते मरण नथी पण महोत्सव छे। ज्यां मोक्षमार्ग अने सत्यनुं खंडन थतुं होय, त्यां जाणकार व्यक्ति थी मौन राखी शकाय नहीं आवा प्रसंगे अने आवी परिस्थिति मां पण सुश्रद्धावन्त अने ज्ञानी व्यक्ति मौन राखे तो तेना जाणपणानी कीमत शुं ? ज्यारे जैन धर्म मां शिथिलाचार धणोज व्याप्त थई गयो हतो अने घणीज विकृति आवी गई हती, त्यारे आपणा धर्म प्राण श्रीमान् लोंकाशाहे प्राणनी परवाह कर्या विना विकृति अने शिथिलाचार नुं खंडन करी, तेने दूर करी शुद्ध जैन धर्म ने प्रगट कर्यो। तेओश्री नो आपणा ऊपर बहुज मोटो उपकार छे।

व्हाला बंधुओ ! आपणा रोमरोम श्वासोच्छवास अणुअे अणुअे अस्थि अने मिंजा तक अेटले के आपणा आत्माना समस्त प्रदेशो धर्म ना शुभ रंग थी रंगाई जवा जोइअे। "अट्ठिमिंज पेमाणु रागरत्ता" अे आगम वाक्य आपणे कदी पण भूलवुं जोइअे नहि। आपणा श्वासोच्छ्वासमां अेज रटन होवुं जोइअे के भगवंत अरिहन्त देव साचा, तेमनी अेटले के अरिहन्त भगवन्त नी आज्ञा प्रमाणे चालवा वाला निर्ग्रन्थ गुरु साचा अने अरिहंत, केवली प्ररूपित दयामय धर्म साचो।

आगममां अेवी वात आवे छे के अगाऊ ना श्रावको ज्यारे अेक वीजा ने मलतां हता त्यारे अेम कहेतां हता के

"अयं आउसो, णिग्गंथं पावयणं अट्ठे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे" अेटले के हे आयुष्मन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचनज अर्थ छे, अेज परम अर्थ छे बाकी सर्व अनर्थ छे। आ लोकमां कोई पण सारभूत-सर्वोत्कृष्ट वस्तु होय तो ते निर्ग्रन्थ प्रवचन ज छे। त्रणे लोक नी ऋद्धि चक्रवर्ती पद अने इन्द्र पद पण निर्ग्रन्थ प्रवचन सामे तुच्छ छे।

आवा गुणो अगाऊ ना श्रावको मां हता। अत्यारे पण ते श्रावको नी झांखी करावे अेवा केटलाक श्रावक रत्नो आपणा संघ मां छे। आपणा श्रीमान् रतनलाल जी डोशी अे फक्त आपणा संघ ना ज नहि पण आखा स्थानकवासी जैन समाज नां अेक अणमोल श्रावक रत्न छे। शुं छे तेमनुं आगमज्ञान!? शुं छे तेमनी नीडरता!? शुं छे तेमनी स्पष्ट वादिता!? शुं छे तेमनी निःस्वार्थता!? तेमना मां अनेक गुणो छे जे कहेवानी मारामां शक्ति नथी। तेमना लखाण मां जिनेश्वर भगवंत ना प्रवचन पर नी श्रद्धा नीतरी रही छे। आगम श्रद्धालु व्यक्तिओ ना हृदय सिंहासन पर तेओ श्री विराजमान छे। आपणा धर्मप्राण श्रीमान् लोंकाशाह आजे नथी परन्तु हुं जो कहुं के श्रीमान् डोशी जी साहेब आजना आपणा लोंकाशाह छे तो तेमां कांई खोटुं नथी। तेमणे कुश्रद्धा-विकृति अने शिथिलाचार ना पडल विखेरी नांख्या छे। विशेष शुं कहेवुं? वधारे समय नथी, मारा अने आपणा बधा वती हुं तेओ श्री ने कोटि कोटि धन्यवाद अने अभिनन्दन आपुं छुं।

बीजा पण अनेक श्रावक रत्नों आपणा संघ मां छे श्रीमान् वकील साहेब, श्रीमान् धींगडमल जी साहेब,

मालु जी साहेब, श्रीमान् जुगराज जी शेठ, श्रीमान् केवलचन्द जी साहेब, श्रीमान् मिलापचन्द जी साहेब, श्रीमान् चम्पालाल जी साहेब गोलेछा, श्रीमान् भीखमचन्द जी साहेब टाटिया श्रीमान् मगराज जी साहेब कोचर आदि आ बधा अने बीजा अमारा मुम्बईवासी जेमाथी अेक महान् आत्मा श्रीमान् झवेरचन्द बापाजी तो चाल्या गया बाकीना श्रीमान् कांतिलाल भाई श्रीमान् जशवंतलाल भाई श्रीमान् हीरालाल भाई आदि श्रावक रत्नों अने बीजा पण घणा श्रावक रत्नों छे। तेमना परिचय मां आप आवो तोज खबर पडे के तैमनी श्रद्धा केवी छे? तेमनुं सत्त्व केवुं छे ? अने बीजा पण तेमना मां शुं अनेक अनेक गुणो रहेला छे। जेम आवा उत्तम श्रावको आपणा संघमां छे तेम केटलाक उत्तम संत सतियाँ जी पण आ भूमि ऊपर विचरी रह्या छे। बधा संत मुनिराज ना निकट परिचय मां तो हुं नथी आवी शक्यो परन्तु परम पूज्य १००८ चारित्र चूडामणी बहुश्रुत पं. मुनि पूज्य श्री समर्थमल जी महाराज साहेब आदि ठाणाओ ना दर्शन अने वाणी श्रवण नो उत्तम ल्हावो मने मल्यो छे। आवा बीजा पण संत मुनिराजो भगवंतनी आज्ञा प्रमाणे विचरवा वाला जरूर हशे "**बहु रत्ना वसुंधरा**" अने भगवान्नी आज्ञा प्रमाणे विचरवा वाला सर्व संत मुनिराजो आराध्य छे तेमा बिल्कुल शंका नथी, परन्तु पूज्य समर्थमल जी महाराज साहेब ने जोता तो अेम थई जाय छे के अरे! आ चौथा आरानी विभूति अहीं क्यां थी? शुं छे तेमनुं ज्ञान!? शुं छे तेमनी श्रद्धा? शुं छे तेमनुं चारित्र? शुं छे तेमनी क्षमा! ? शुं छे तेमनी मृदुता!? शुं छे तेमनी सरलता!? शुं छे तेमनी

निःस्पृहता? तेओ पूज्य श्री गुणोना दरीया छे। तेमनो शिष्य समुदाय पण विद्वान् क्रिया पात्र अने चारित्र संपन्न छे।

आप सर्वेअे आ अधिवेशन मां उपस्थित थई ने संघ नुं गौरव वधार्यु छे। आ संघ आपनोज छे। आप बधाथीज आ संघ सुशोभित छे। आपणे बधा साधर्मी बंधुओ छीअे आपणा बधाना अन्दर अरस परस वात्सल्य भाव वधतो ज रहे। आपणे बधा जिन आज्ञा प्रमाणेज चालीअे। अेज अभ्यर्थना।

बंधुओ ! अध्यक्ष पद ने माटे मारी योग्यता नथी। आप बधाना प्रेम अने आग्रह ने वश थई मे अनुमति आपेल छे। माराथी जे कोई पण क्षति थई होय ते बदल हुं आप सर्वेनी क्षमा मांगु छूं।

श्री सनवाड संघे जे आ उत्तम व्यवस्था करी छे अने श्रीमान् जुगराज जी शेठ अने श्रीमान् मालुजी शेठे जे महेनत लई ने आपणा आ अधिवेशन ने सफल बनाव्युं छे ते माटे मारा अने आप बधा वती हुं तेमनो आभार मानु छूं अने धन्यवाद आपु छुं। आपना सहकार थी संघ नी शोभा छे, उन्नति छे अने संघ ना आशिष थी आपनी उन्नति छे आपनी धर्म वृद्धि छे। मारा बोलवामां वीतराग प्रभु नी आज्ञा थी कांई पण ओछुं अधिक के विपरीत बोलायुं होय तो हुं अरिहंत सिद्ध भगवन्त नी साक्षीअे क्षमा मांगू छूं।''

पूज्य महात्माजी म. सा. जब गृहस्थावस्था में थे तब दृढ़धर्मी प्रियधर्मी के साथ उनका जीवन एकदम सरल मधुर, शान्त, प्रशान्त था। पर जब आप अपने प्राणप्रिय धर्म पर कुठाराघात अथवा उसका ह्रास होते देखते तो उनकी आत्मा

तिलमिला उठती। ऐसी अवस्था में चाहे कैसी भी उच्चस्तरीय सभा क्यों न हो आप अपने विचार पूर्ण दृढ़पूर्वक एवं निडरता के साथ व्यक्त करते थे। इतना ही नहीं कभी-कभी कठोर शब्दावली का भी प्रयोग कर डालते थे। प्रसंग सन् १९७० का था जब जैन युवक मण्डल ने एक सभा का आयोजन किया जिसकी अध्यक्षता कॉन्फ्रेस के प्रमुख श्री चमनलाल-चकुभाई शाह ने की। इस सभा में मुख्य विचारणीय मुद्दा था "क्या जैन साधु-साध्वीजी के आचार विचार में परिवर्तन करना आवश्यक है या नहीं? यदि है तो किस प्रकार का" इस सभा में सर्वज्ञोपादिष्ट जैन दर्शन के मूल सिद्धान्तों से अनभिज्ञ, भौतिकता की चकाचौंध एवं लोक प्रवाह में बहने वाले, सुखशीलिएं एवं आरामतलबी भक्तों ने साधु समाचारी में आमूल चूल परिवर्तन करने हेतु अपने विचार रखें।

धन दे तन को राखिए, तन दे रखिए लाज।
धन दे, तन दे, लाज दे, एक धर्म के काज॥

हां तो उस सभा में पूज्य महात्माजी म. सा. जो कि गृहस्थावस्था में थे तथा हमारे संस्कृति रक्षक संघ के अध्यक्ष थे उन्होंने किस दृढ़ता एवं निडरता से उस सभा को सम्बोधित किया वह हम सब के लिए प्रेरणास्पद एवं मार्गदर्शक है। पढ़िए वह उद्बोधन -

"आगमोमां जैन मुनि माटे जे प्रतिज्ञा, जे नियमो, जे आचार, जे मर्यादा अने जे समाचारी बताववामां आव्या छे तेमां किंचित् मात्र पण फेरफार थई शकेज नहि। आ बधी वस्तुओ कोई मारा तमारा जेवा सामान्य माणसोअे कहेल नथी

परन्तु सर्वज्ञ भगवन्त तीर्थकर प्रभुअे कहेल छे अने तेथी ते घणीज सुंदर छे, अने टुंकमां कहीअे तो सर्वोत्कृष्ट छे। आनाथी विशेष सुन्दर जगतमां कांई होई शकेज नहि।

सर्वज्ञ सर्व द्रव्य अने सर्व पर्यायोना ज्ञाता होय छे। भूत भविष्य अने वर्तमानकाल तेमज लोकालोकनां सर्व भावो ने तेओ जाणता हता। तेओ पूज्यश्री ने आ जमानानी पण खबर हती। आ कालमां पण आगम अनुसार आचारनां पालनथीज आत्म कल्याण थशे अेमां कांई पण शंका राखवा जेवुं नथी।

नवे कोटिअे हिंसा करवी नहि, झूठ बोलवुं नहि, चोरी करवी नहि, अब्रह्मचर्य नुं सेवन करवुं नहि, परिग्रह राखवो नहि, रात्रि भोजननो त्याग, अठारे पाप स्थानकोनो त्याग अने आ बधाना शुद्ध पालन माटे अन्य आचार नियमोनी मर्यादा आ बधु अेटलुं सुंदर छे के ते शब्दो मां व्यक्त करी शकाय तेम नथी।

भगवाने कह्युं छे के - '**सव्वे जीवावि इच्छंति जीविउं ण मरिज्जिउं, तम्हा पाणवहं घोरं णिग्गंथा वज्जयंति णं**' - सर्व जीवो जीववाने इच्छे छे कोई मरवाने इच्छतुं नथी तेथी घोर अेवी हिंसाने मुनिवरो त्यजी दे छे। मुनि त्रस अने स्थावर-कोई पण जीवनी हिंसा नवे कोटिअे नहि करवानी प्रतिज्ञा ले छे। स्थावर अेटले पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वाऊकाय अने वनस्पतिकाय। जेओ अेम कहे छे के मुनिअे माईकमां बोलवुं जेईअे, तेओ अेटलुं पण नथी समझता के आमां मुनिनी प्रतिज्ञानो भंग थाय छे। माईक बिजली थी चाले छे। बिजली अग्निकायनोज अेक भेद छे। अग्निकाय ना

जीवोनी हिंसा नहि करवानी मुनिने नवकोटिनी प्रतिज्ञा छे। जैन मुनि तो कोई अन्य माईक नो उपयोग करंतु होय तेने भलुं पण जाणे नहि तो पछी पोताने बोलवानी तो वातज क्यां? जे मुनिओ माईकनो उपयोगकरे छे ते भोला मुनिओ कां तो जाणतांज नथी के पोते शुं प्रतिज्ञा लीधी छे अथवा धीठतापूर्वक पोतानी प्रतिज्ञा नो भंग करे छे। हुं अेम चोक्कसपणे मानुं छुं के जे साधुओ माईकमां बोली पोतानी प्रतिज्ञानो भंग करे छे तेमनी प्रतिष्ठा अेकदम ओछी थई जाय छे। जेवी रीते कोई अेक भाई आपँणी सामे उपवासनां पच्चक्खाण करे अने पछी आपणे ते भाईने होटेलमां खातां जोईअे त्यारे ते व्यक्ति प्रत्ये आपणने केवां भाव थई आवे छे?

ज्यारे कोई भाई के बहेन दीक्षित थाय छे अने तुरतज तेना मोढा आगल अमारा आ नेताओ माईक मूकी दे छे अने ते नवदीक्षित तेमां बोले छे त्यारे मने विचार थई आवे छे के शुं आ नवदीक्षित आटलीज वार मां पोते शुं प्रतिज्ञा लीधी छे ते भूली गया? अने आ नेताओ शुं अेटलुं पण समझतां नथी के अमो आ साधुनी प्रतिज्ञा भंगावी रह्या छीअे? सुश्रावको होय ते तो साधुना संयम पालन मां सहायक थाय, संयमना भंगमां नहि। भगवाने कह्यु छे-

"एवं खु णाणीणो सारं जं ण हिंसइ किंचणं।
अहिंसा समयं चेव एतावत्तं वियाणिया॥"

ज्ञानीना ज्ञान नो सार अे छे के ते कोई जीवनी हिंसा न करे
वली सांभलो - अत्थि एगं धुवं ठाणं, लोगग्गाम्मि दुरारुहं।
जत्थ णत्थि जरा मच्चु वेयणा वाहिणो तहा।।

अमारी अे श्रद्धा जे के लोकना अग्रभागे अेक अेवुं स्थान जेने 'मोक्ष' कहेवामां आवे छे आ मोक्ष छे, अने छेज। शुं आप बधा पण मोक्ष ने मानो छो? आप बधानी तो संसाराभिमुख दृष्टि लागे छे। आप बधा तो मुनिओने मोक्षमार्ग मां थी खेंची ने संसारमार्ग मां पटकतां हो तेम लागे छे आपनी आवो बधी वातो थी मने घणुंज दुःख थाय छे। जैन साधु ने अब्रह्मचर्यनी छूट, पगार देवानी छूट, पैसा राखवानी . छूट, कोईना घेर जमवा जवानी छूट, नलनु पाणी वापरवानी छूट, छत्री राखवानी छूट, पगरखां पहेरवानी छूट, माईक नी छूट, दीवाबत्तीनी छूट, वाहन आदिनी छूट, साधुने समाज सेवको बनावी दयो! निशालना शिक्षक बनावो, साध्वीजी ने नर्स बनावी दयो! - हुं आप बधाने पूछूं छूं के सर्वज्ञ कथित जैन दर्शनमां आवा तुच्छ अने वाहियात फेरफारो सूचवनारा आप बधा छो कोण? आ जैन दर्शन पोतानी सर्वोत्कृष्टता थी ज सुप्रतिष्ठित छे। आपने आ दर्शनना सिद्धान्त अने नियमो मंजूर होय, आपने मोक्ष जोइतो होय, तोज तमो आ जैनदर्शन ने स्वीकारो। नहितर कोण तमोने कहे छे के तमो जैनदर्शन ने मानो? तमोने जैन दर्शननां सिद्धान्त अने नियमो न रुचतां होय तो आप जैन दर्शन ने छोडी शको छो, अहीं कांई जबरजस्ती नथी, परन्तु तमारी तुच्छ बुद्धि अनुसार आ महान् दर्शन मां फेरफार करवानुं कहेवुं अे तो नरी खालीशताज छे।

हुं पंडित सुखलाल जी, पंडित बेचरदास जी अने पंडित दलसुखभाई मालवणिया ने पण कहुं छुं के तेमनी दृष्टि शुद्ध जैन दर्शन थी तद्दन विपरीत छे, जो तेओ प्रामाणिक होय तो

तेमणे जाहेर करी देवुं जोइअे के जैन दर्शन तो अेक निवृत्ति प्रधान अने मोक्षमार्ग नी आराधना माटेनुंज़ दर्शन छे। आ दर्शनमां तो साधुओ माटे समाज सेवानुं नामोनिशान नथी।

आ पंडितोने पण मारे अेज़ कहेवानुं छे के आपने जो आ दर्शन न रुचतुं होय तो तेनो तमो त्याग करी शको छो पण आपना तुच्छ अने वाहियात तरंगो प्रमाणे महान् जैन दर्शन मां विकृति लाववानी धृष्टता तो नज़ करो।''

यह था पूज्य महात्माजी म. सा. का अपने प्राणप्रिय धर्म रक्षा का अद्भूत नमूना।

आप जलकमलवत् अनासक्त भाव से संसार में रह रहे थे। भोजन करते समय, मौन द्रव्यों की मर्यादा, उपवास आदि तपस्या, नियमित व्याख्यान श्रवण आगम वाचना, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि धार्मिक कार्यों के साथ आप वैराग्य भावना में वृद्धि कर रहे थे। आपकी दीक्षा भावना वर्षो से बलवती थी। पर आपकी मातुश्री का वात्सल्य भाव और आपकी मातृभक्ति बाधक बन रही थी। आप माताजी से आग्रह करते रहते और माताजी टालती रहती। आखिर पुत्र की उत्कृष्ट भावना को देख कर मातुश्री ने आपको लिखित में आज्ञा प्रदान कर दी संयोग से माताजी का स्वर्गवास दिनांक ६ जून १९७२ को हो गया। आप माताजी के स्वर्गवास के समय उनके लिए लिखते हैं कि ''मातेश्वरी मेरी जननी तो थी ही, परन्तु इससे भी बढ़कर वह मेरी धर्म दात्री भी थी, धर्म के रंग में उन्हीं ने मुझे रंगा है। उन्हीं के सुसंस्कारों ने मेरी धर्म चेतना जगाई है।'' ये वाक्यांश आपकी मातृभक्ति को उद्घाटित

करते हैं। अब आपकी दीक्षा की आज्ञा में बाधा जैसी कोई बात न रही। क्योंकि आपकी धर्म साधिका सुश्राविका श्रीमती लाभु बहन तो स्वयं धर्म रंग में रंगी हुई थी। आपकी स्वयं की इच्छा दीक्षा अंगीकार करने की थी। पर आपकी एक मात्र सुपुत्री कुमारी सुश्री भावना बहन बी.ए. की उस समय दीक्षा की भावना नहीं बनी थी। अतएव अपनी पुत्री की वजह से आपको संसार में रुकना पड़ रहा था। कुटुम्ब की ओर से कोई बाधा न रहने पर भी व्यावसायिक भागीदारी का काम कुछ उलझा रहने से सात-आठ माह तक आपको संसार में और रुकना पड़ा।

आपकी दीक्षा

श्री जयंतीभाई मारवाड़ में ज्ञानगच्छ में दीक्षा लेने वाले हैं। यह जान कर आपके कई हितैषियों और शुभेच्छुकों ने आपसे कहा - "जयंतीभाई! ज्ञानगच्छ की समाचारी बहुत कडक है। मारवाड़ की तेज सर्दी और तेज गर्मी तथा वहाँ का भोजन आदि आपको कैसे रुचेगा? आपका शरीर अत्यंत सुकोमल है अतः मारवाड़ की सर्दी गर्मी आदि आप कैसे सहन करेंगे?"

इसके उत्तर में आप अत्यंत नम्रता पूर्वक फरमाते कि - "चाहे जितनी तकलीफे परेशानियाँ, कठिनाइयाँ आयेगी वो शरीर को आयेगी आत्मा को नहीं। मैंने अच्छी तरह सोच समझ कर ही ज्ञानगच्छ में दीक्षित होने का निर्णय लिया है और वहाँ ही दीक्षा लूँगा।"

यद्यपि आपकी भावना पूज्य श्रमण श्रेष्ठ के मुखारविन्द से ही दीक्षा ग्रहण करने की थी। पर उक्त कठिनाइयों के कारण आप पूज्य श्रमण श्रेष्ठ के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण नहीं कर सके, क्योंकि इसी बीच श्रमण श्रेष्ठ का देहावसान हो गया था। चूंकि आपकी भावना शुरू से ही गुप्त रूप से बिना किसी आडम्बर के जहाँ कहीं भी ज्ञानगच्छाधिपति पूज्य तपस्वीराज श्री चम्पालाल जी म. सा. विराजते हों वहाँ उपस्थित होकर दीक्षा ग्रहण करने की थी। उसी के अनुरूप आप अपने मात्र २०-२२ पारिवारिक सदस्यों के साथ धार (म. प्र.) जहाँ पूज्य तपस्वीराज विराजते थे। वहाँ पधार कर मिती माघ सुद ५ सवत् २०२९ दिनांक ८-२-१९७३ को पूर्ण सादगी के साथ भागवती दीक्षा अंगीकार की। समाज के अनेक महानुभावों की आपकी आदर्श दीक्षा में उपस्थित होने की उत्कृष्ट भावना थी। पर जाहिरात के अभाव में वे इस प्रसंग पर नहीं पहुँच पाए। पूज्य बहुश्रुत समर्थमल जी म. सा. के स्वर्गवास के पश्चात् पूज्य तपस्वीराज श्री चम्पालाल जी म. सा. के पास आपकी प्रथम दीक्षा थी। यानी आप तपस्वीराज के प्रथम शिष्य बने।

"महात्मा जी म. सा. लाखो जनों का सहारा था।
गहन अंधकार में चमकता हुआ सितारा था॥
नंदन वन की उपमा से सुशोभित वो।
मझधार में डुबती हर किस्ती का किनारा था॥"

✍: राजेशकुमार जैन, दोघट

पूज्य महात्माजी म. सा. का संयमी जीवन

महात्माजी नामकरण - एक समय का प्रसंग है कि स्वर्गीय बहुश्रुत श्रमण श्रेष्ठ पंडित रत्न श्री समर्थमल जी म. सा. अपने शिष्य समुदाय के साथ विहार कर किसी गांव में पधारे। वहाँ के एक बुजर्ग श्रावक जी ने संतों से पूछा कि इन समर्थमल जी म. सा. को बहुश्रुत की पदवी किसने दी। संतों ने प्रत्युत्तर में उन बुजुर्ग श्रावक जी से पूछा कि - 'आपको 'बा साहब' की पदवी किसने दी।' तो श्रावक जी कहने लगे कि यह तो उम्र के हिसाब से अपने आप लोग कहने लग गए। बस श्रावक जी यही बात, समर्थमल जी म. सा. के लिए है। ये वर्तमान में जितने भी जैनागम है उनके गूढ़ एवं तलस्पर्शी रहस्य के ज्ञाता हैं। इसलिए लोग इन्हें 'बहुश्रुत जी' कहने लग गए। यह पदवी नहीं बल्कि यथार्थ गुण निष्पन्न सम्बोधन है।

यही बात पूज्य जयन्तीमुनि जी म. सा. के लिए थी। जब आप दीक्षित हुए तब आपका नाम पूज्य जयन्तीलाल जी म. सा. ही था। कुछ समय तक तो इसी नाम का सम्बोधन रहा। पर जब आपकी भाव और करण दोनों संयम चर्या का उत्कृष्ट पालन देखा, तो लोगों के मुख से सहज ही निकल पड़ा कि यह तो वास्तव में महान् आत्मा है यानी महात्मा है। मोक्ष मार्ग का अद्वितीय साधक है। जिसने भी आपका यह

नामकरण किया, उसने आपके संयमी जीवन की उत्कृष्ट साधना से आकृष्ट होकर किया। वास्तव में आप शुद्ध अन्तः करण से श्रमण समाचारी के उत्कृष्ट पालक होने से अपने गुणों के कारण महात्मा (महान् आत्मा) कहलाये।

पूज्य महात्माजी म. सा. व्याख्यान प्रारम्भ करते समय फरमाया जाने वाला स्तवन एवं उसके बाद का उद्‌बोधन इस प्रकार है -

ले लो शांति प्रभु रो नाम, जिनवर शांति-शांति रो धाम।
धोलो दिल रो पाप तमाम, वेगी मुक्ति मिलसी॥ टेर॥
नहीं है जीवन रो विश्वास, अचानक रूक जावेला श्वास।
पूरी हुई न किण री आश, मन की मन में रह जासी॥ १॥
बांधो मत कर्मों का भार, सुनकर जिनवाणी का सार।
जग में भरियो दुःख अपार, आखिर छोड़या सरसी॥ २॥
कोई मत करजो रे प्रमाद, करलो ब्रह्मचक्री ने याद।
ले लो नरभव रो शुभ स्वाद, सूरज निश्चय ढलसी॥ ३॥
छोड़ो सगला आरत ध्यान, करलो समता रस रो पान।
जग में होनहार बलवान्, टालियां नहीं टलसी॥ ४॥
सुमरो वीर प्रभु रो नाम, जिनेश्वर करते हैं कल्याण।
यो तो स्वार्थ भरियो संसार, थारो कोई नहीं है॥ ५॥
अरिहंत सिद्ध साधु अणगार, सांचों धर्म हिये में धार।
वोही करसी बेड़ा पार, और सहारो नहीं है॥ ६॥
जीवडा होकर रहो सचेत, इण चारों से राखो हेत।
नहीं तो चिड़ियां चुगसी खेत, कोई रखवालो नहीं है॥ ७॥
थारे पग-पग पर लुटांक थां पर रया निशाना ताक।
इन चारों ने साथे राख, कोई पतियारो नहीं है॥ ८॥

यह है प्राणों रा भी प्राण, यह है त्राणों रा भी त्राण।
वो ही करे क्रोड़ कल्याण, थारो मारो नहीं है॥ ९॥

जो भाग्यशाली आत्मा भगवान् तीर्थंकर देव नी वाणी पर श्रद्धा करे, विश्वास करे, रुचि करे, प्रतीती करे, भगवान् की वाणी ने अन्तर से सांची समझे और जीवन में उतारे, वह सब दुःखों से मुक्त होवे। फिर आधि, व्याधि, उपाधि, जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, चिन्ता, दुःख दारिद्र, दुर्गति, संयोग वियोग, रगड़ा झगड़ा, क्लेश, करकश रहे नहीं, कोई भी प्रकार का दुःख कष्ट या तकलीफ रहे नहीं। जो भगवान् की आज्ञा के अनुसार चले तो आत्मा परम सुखी बने। आत्मा में शांति, समता, समाधि, आनन्द, प्रसन्नता, निर्भयता, मन का सुख, मन की शान्ति, वचन का सुख, वचन की शान्ति, काया का सुख, काया की शान्ति, अनुपम आत्मिक सुख, अनुपम आत्मिक आनन्द, सुगति, फिर मनुष्य का भव और पूरी पुण्यवानी होवे तो भाग्यशाली आत्मा ने वैराग्य भाव आवे, संसार असार लगे, काम भोग छोड़ना, कषाय छोड़ना, छह काय की हिंसा छोड़ना, संयम लेना धर्म करना, सिंह की तरह संयम लेना, सिंह की तरह संयम का पालन करना, मरना मंजूर मगर संयम में दोष लगाना मंजूर नहीं। **''किं परम मरणम् सिया''** मरने से ज्यादा और क्या होने वाला है। जो इस प्रकार का जीवन जीता है वह भव्य आत्मा क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होवे, वह वीतरागी बने, केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त करे, कोई केवली बने, कोई तीर्थंकर बने और मोक्ष के अक्षय सुखों को प्राप्त करे। भगवान् तीर्थंकर देव की वाणी में वह

शक्ति है, यदि कोई उस पर विश्वास करके जीवन में उतारे तो उसे अनन्त सुखों का स्वामी बनादे। जरूरत है भगवान् के वचनों पर श्रद्धा करके जीवन में उतारने की। भगवान् तो यही फरमाते हैं कि मनुष्य भव की प्राप्ति बड़ी दुर्लभता से मिली है। मनुष्य भव का मौका हाथ आया है। यह मौका कायम रहने वाला नहीं है। इसलिए धर्म करणी कर ले। यह उद्बोधन प्रायः पूज्य महात्माजी म. सा. व्याख्यान चालू करने से पूर्व फरमाते थे, जो वैराग्य रंग से अनुरंजित सीधा हृदय को स्पर्श करने वाला होता था। इसके बाद आगम की गाथा का वाचन कर उसका विवेचन फरमाते थे।

पूज्य महात्मा जी म. सा. के प्रेरक प्रभावशाली प्रवचनों से कई मुमुक्षु आत्माएं वैराग्य पथ पर आगे बढ़ी, कई भव्य आत्माओं ने श्रावकव्रत अंगीकार किये और अपने जीवन को बदला यह सब आपके आदर्श संयमी जीवन और मधुर व्यवहार का परिणाम था। आपके संयमी जीवन की विशेषताएं आगे के पृष्ठों में पढ़े।

जिनके जीवन में फकीरों सी मस्ती थी,
चेहरे पर सदा मुस्कराहट तैरती थी।
नाज है श्री जयन्तीमुनि जी म. सा. आप पर,
दुनिया जिनके दर्शन को तरसती थी॥
यो तो सभी मरण के राही, एक रोज मर जाते हैं।
किन्तु धन्य वे है, जो दुनिया में मर कर भी,
अमर नाम कर जाते हैं।

आदर्श गुरु के आदर्श शिष्य

पूज्य महात्मा जी म. सा. की चारित्रिक विशेषताएं

बहुश्रुत पं. र. १००८ श्री समर्थमल जी म. सा. के पट्टधर शिष्य ज्ञानगच्छाधिपति पूज्य तपस्वीराज श्री चम्पालाल जी म. सा. के मुखारविंद से दीक्षित महात्मा पूज्य श्री जयंतीलाल जी म. सा. एक आदर्श श्रमण निर्ग्रंथ थे। उनमें ऐसी कई चारित्रिक विशेषताएं थी जिसके कारण वे न केवल ज्ञानगच्छ में अपितु संपूर्ण जैन समाज में-जनजन के श्रद्धा के केन्द्र बन गये। उन्होंने जिनवाणी के अनुरूप अपना जीवन बना कर गच्छ, संघ एवं जिनशासन की गौरव गरिमा में चार चांद लगा दिये। जिन्होंने पूज्य महात्मा जी म. सा. के दर्शन किये, उनके मुखारविंद से जिनवाणी या आगम वाचना सुनने का लाभ प्राप्त किया वे तो उनके आदर्श जीवन से परिचित हो गये किंतु जिनको यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ उनके मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि आखिर उनके संयमी जीवन में ऐसी क्या विशेषताएं थी जिनके कारण वे इस पंचम आरे में भी चौथे आरे की वानगी रूप और आचारांग का जीवंत रूप कहलाये। उनमें से कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं-

१. सच्ची साधुता - आचारांग सूत्र प्रथम श्रुतस्कंध प्रथम अध्ययन के तीसरे उद्देशक में अनगार के तीन लक्षण बताये हैं - **१. उज्जुकडे** (ऋजुकृत) - जो ऋजु अर्थात् सरल हो जिसका मन एवं वाणी कपट रहित हो तथा जिसकी कथनी

करनी में एक रूपता हो वह ऋजुकृत है। उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन ३ में भी कहा है -

सोही उज्जुय भूयस्स धम्मो सुद्दस्स चिट्ठइ।
णिव्वाणं परमं जाइ, घयसित्तिव्व पावए॥

- ऋजु आत्मा की शुद्धि होती है। शुद्ध हृदय में धर्म ठहरता है। इसलिये ऋजुता धर्म का-साधुता का मुख्य आधार है। ऋजु आत्मा मोक्ष के प्रति सहज भाव से समर्पित होती है इसलिये अनगार का दूसरा लक्षण कहा है-२. णियाग- पडिवण्णे (नियाग प्रतिपन्न) - जिसकी साधना का लक्ष्य भौतिक ऐश्वर्य या यश प्राप्ति न हो कर आत्मा को कर्ममल से मुक्त करना होता है। तीसरा लक्षण है- ३. अमायं (अमायी) - माया का अर्थ संगोपन या छुपाना है। साधना के पथ पर बढ़ने वाला अपनी संपूर्ण शक्ति को उसी में लगा देता है। आत्म कल्याण के कार्य में वह अपनी शक्ति को छुपाता नहीं है। वह माया रहित होता है।

पूज्य महात्मा जी म. सा. उपरोक्त तीनों लक्षणों से युक्त सच्चे अनगार थे। उनमें बालक सी सरलता, संयम पालन में कठोरता, माया रहितता और आत्मा के प्रति पूर्ण सजगता थी। यही कारण था कि उन्होंने "जाए सद्धाए णिक्खंतो तमेव अणुपालिज्जा" जिस श्रद्धा (निष्ठा/वैराग्य भावना) के साथ संयम पथ पर कदम बढ़ाया उसी श्रद्धा के साथ संयम का पालन किया।

२. गुरु आज्ञापालन और समर्पणता - दिनांक ८-२-७३ को धार (म. प्र.) में ज्ञानगच्छाधिपति पूज्य तपस्वीराज

श्री चंपालाल जी म. सा. के मुखारविन्द से दीक्षा पाठ पढ़ कर पूज्य श्री जयंतीलाल जी म. सा. ने अपना जीवन गुरु चरणों में समर्पित कर दिया और कह दिया -

आ देहादि आज थी वर्तो प्रभु आधीन।

दास दास हुं दास छुं तेह प्रभु नो दीन॥

"आणाए मामगं धम्मं" गुरु आज्ञा ही मेरा परम धर्म है। इसका सदैव ध्यान रखते हुए आपने अपना सर्वस्व समर्पण गुरु चरणों में कर दिया। आपका कोई भी कार्य गुरु आज्ञा से बाहर नहीं होता। क्योंकि -

"आणाए एगे सोवट्ठाणे आणाए एगे णिरुवट्ठाणे। यं ते मा होउ एयं कुसलस्स दंसणं॥" (आचारांग ५-६)

जिसने महावीर के शासन को समझा है वह उनकी आज्ञा में कभी निरुद्यमी नहीं हो सकता और वह उनकी आज्ञा बाहर उद्यम कभी नहीं कर सकता। गुरु की आज्ञा क्या है? अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन उनकी आज्ञाएं हैं। पूज्य महात्मा जी म. सा. ने इन सभी आज्ञाओं का पूर्णतः पालन किया। आज्ञा पालन करना और चित्त प्रसन्न रखना विनयी शिष्य का लक्षण है। विनयी शिष्य को ही अक्षय खजाने की चाबी मिलती है। आचारांग सूत्र प्रथम श्रुतस्कंध ५-६ में प्रभु ने फरमाया है -

तदिट्ठिए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सन्नी तन्नीवेसणे अभिभूय अदक्खू

जो साधक हमेशा गुरु की आज्ञा में रहता हो, गुरु प्रदर्शित मार्ग स्वीकार करता हो, हृदय से गुरु का बहुमान

करता हो, गुरु पर श्रद्धा रखता हो गुरुकुल वास करता हो वही कर्मो को जीत कर तत्त्व स्वरूप को जान सकता है। इसीलिये आणाकंखी पंडिए (आचारांग ४-३) आज्ञाकारी शिष्य को पंडित कहा है।

पूज्य महात्मा जी म. सा. की अपनी कोई इच्छा नहीं थी। क्योंकि वे फरमाते थे- **'छंदं णिरोहेण उवेइ मोक्खं'** अपनी इच्छा में मोक्ष नहीं है मोक्ष तो भगवान् के बताये हुए मार्ग पर चलने से ही मिलता है।

गुरु आज्ञा का पालन करते हुए उन्हें अपूर्व प्रसन्नता का अनुभव होता था। प्रसंग है सन् १९९२ का जब आपने गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर भीषण गर्मी में जोधपुर से हरियाणा उत्तरप्रदेश की ओर विहार किया। श्री प्रदीपभाई डी. शेठ (वर्तमान में पूज्य श्री प्रदीपमुनि जी म. सा.) और उनके मित्र राजेशभाई शाह लखतर निवासी पूज्य महात्मा जी म. सा. आदि ठाणा ४ के दर्शनार्थ दिनांक १८-२-९२ को सिरसा पहुंचे। श्री प्रदीपभाई ने पूज्य महात्मा जी म. सा. से पूछा - "गुरुदेव ! आप गर्मी में इतना उग्र विहार करके जोधपुर से ५०० किलोमीटर दूर कैसे पधार गये?" तब पूज्य महात्मा जी म. ने अत्यंत विनम्र भाव से उत्तर दिया-

"प्रदीपभाई ! बहुश्रुत गुरुदेव पूज्य श्री समर्थमल जी म. सा. की हित शिक्षाएं महान् हैं और पूज्य गुरुदेव बा. ब्र. तपस्वीराज जी म. सा. पूज्य सेवाभावी जी म. सा. श्रुतधर पं. र. वा. ब्र. श्री प्रकाशमुनि जी म. सा. पूज्य पं. र. श्री घेवरमुनि जी म. सा. "वीरपुत्र" आदि सभी गुरु भगवंतों

की मुझ पर असीम कृपा है। मुझे ऐसा लगता है कि जैसे मैं कल ही विहार कर के आ गया हूं। उनकी कृपा और आशीर्वाद से विहार में कोई तकलीफ ही नहीं हुई। खूब ही समाधि और प्रसन्नता है। संयम में अपूर्व समाधि और आनंद है। मेरे आनंद का कोई पार नहीं हैं। तुमको कैसे बताऊं यह तो अनुभव की बात है। गुरु आज्ञा और समर्पणता में जो आनंद है वह अद्‌भूत है।''

ऐसे आदर्श संत रत्न थे पूज्य महात्मा जी म. सा. जिनके रोम-रोम में उत्कृष्ट संयम पालन क़ी महान् अभिलाषा थी और जो गुरु आज्ञा में पूर्णतया समर्पित थे।

३. अप्रमत्तता - ''**धीरे मुहुत्तमवि णो पमायए, खणं जाणाहि पंडिए** (आचा० अ. २ उ० १) समयं गोयम ! मा पमायए (उत्तरा० अ० १०) इन आगम वाक्यों को आत्मसात करते हुए पूज्य महात्मा जी म. सा. ने संयम पालन में कभी प्रमाद नहीं किया। '**इणमेव खणं वियाणिया**' (सूयग० १/२/३/१९) के अनुसार मानव भव को कर्म काटने का स्वर्णिम अवसर समझ कर उन्होंने धर्म साधना में सतत जागरूकता रखी और हर क्षण हर पल को महत्त्वपूर्ण समझा। **भारंड पक्खी व चरेऽप्पमत्ते** (उत्तरा० ४-६) **सुत्ता अमुणी मुणीणो सया जागरंति** (आचा० अ० ३ उ० १) के अनुसार साधुचर्या पालन में सदैव सजग रहे। दस यति धर्म विनय वैयावृत्य ध्यान स्वाध्याय तप आदि आपके जीवन के अभिन्न अंग बन गये। आगमों का पठन पाठन व्याख्यान एवं घंटों आगम वाचना फरमाते हुए आपने कभी थकान, उकताहट और

निरसता का अनुभव नहीं किया। और अंत समय तक "**अप्पमत्तो परिव्वए**"- अप्रमत्त होकर संयम साधना में विचरण करते रहे और "**आयट्ठं सम्मं समणुवासेज्जासि**" - अपने आत्महित के लिए सम्यक् प्रकार से प्रयत्नशील बने रहे।

४. सहनशीलता - पूज्य महात्मा जी म. सा. कष्ट सहिष्णु थे। अनुकूलताओं का स्वेच्छा से त्याग करना और प्रतिकूलताओं को स्वेच्छा से समभाव पूर्वक सहन करना आपकी विशेषता थी। उपसर्ग और परीषहों को आप अपनी संयम सफलता की कसौटी मानते थे और हर तरह से हर समय इस कसौटी पर खरा उतरने का प्रयास करते थे उनका फरमाना था - "हमारे इस जीव ने नरक निगोद में कैसे-कैसे दुःख सहन किये हैं। उनके सामने तो संयम के दुःख कुछ भी नहीं है। हमारे शासनपति प्रभु महावीर स्वामी के लिए कहा है - "**सूरो संगामसीसे वा संवुडे तत्थ से महावीरे** - प्रभु महावीर ने कर्मो के साथ कैसा संग्राम किया ? अतः '**इमेण चेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण बज्झओ ?**' (आचा० २-३) करने योग्य कार्य तो यही है कर्मों का कर्ज उतारने का यह अनुपम मौका है। यह कहते हुए वे प्रतिकूल परिस्थितियों को भी '**सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ**' समभाव से सहन कर लेते थे। न तो उनमें सुखशीलियापन था और न दुःख भीरुता ही। सुख दुःख दोनों अवस्थाओं समभाव से रहना उनका स्वभाव था। इस हीयमान काल में ऐसे साधक विरले ही होते हैं।

५. आत्मार्थीपन - दशवैकालिक सूत्र अध्ययन १०-१५ में कहा है -

हत्थ संजए पाय संजए, वाय संजए संजइंदिए
अज्झप्परए सुसमाहिअप्पा, सुत्तत्थं च वियाणइ जे स भिक्खू ॥

– जो हाथों से संयत है, पैरों से संयत है अर्थात् हाथ-पैर आदि अवयवों को कछुए की तरह संकोच कर रखता है और आवश्यकता पड़ने पर यतनापूर्वक कार्य करता है, जो वचन से संयत है अर्थात् किसी को सावद्य एवं पीड़ाकारी वचन नहीं कहता तथा जो सभी इन्द्रियों को वश में रखता है, अध्यात्म रस में एवं धर्मध्यान शुक्लध्यान में रत रहता है, जो संयम में अपनी आत्मा को समाधिवंत रखता है और जो सूत्र और अर्थ को यथार्थ रूप से जानता है वह भिक्षु कहलाता है। पूज्य महात्मा जी म. सा. में भिक्षु के उपरोक्त सभी गुण थे। वे आत्मार्थी साधक थे। कषाय उपशांतता, निस्पृहता, मधुर भाषिता, दयालुता आदि कई गुण उनमें थे। वे गुणों के सागर थे। जिनका वर्णन मुश्किल है।

६. विनीतता - चूंकि पूज्य महात्मा जी म. सा. ने आगमों को केवल पढ़ा ही नहीं, अपितु उनके भावों को जीवन में उतार रखा था। अतएव आप जानते थे कि जैन दर्शन का मूल विनय है। जिस प्रकार मूल से ही स्कंध, शाखाएँ, प्रशाखाएँ, पत्ते, पुष्प और फल की प्राप्ति होती है। उसी प्रकार मोक्ष रूपी फल की प्राप्ति भी विनय युक्त जीवन से ही संभव है। पूज्य महात्मा जी म. सा. का जीवन गृहस्थावस्था से ही विनय गुण से ओत-प्रोत था। संयम लेने के पश्चात् तो आपका यह विनय गुण विशेष प्रगाढ़ हो गया। आप रत्नाधिक का विनय करने के साथ अपने छोटे संतों एवं

महासतियों के साथ भी इतने शालीनता और विनय से बात करते कि सामने वाले को शर्म महसूस होने लग जाती। आपके जीवन में दशवैकालिक सूत्र अध्ययन ९ उद्देशक २ की निम्न गाथाओं के भाव उतर रखे थे।

मूलाओ खंधप्पभवो दुमस्स,
खंधाओ पच्छा समुविंति साहा।
साहप्पसाहा विरुहंति पत्ता,
तओ सि पुप्फं च फलं रसो॥ १॥
एवं धम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मुक्खो।
जेण कित्तिं सुयं सिंग्घ, णिस्सेसं चामिगच्छइ॥ २॥

अर्थात् - द्रुम अर्थात् वृक्ष के मूल से स्कन्ध (धड़) उत्पन्न होता है। इसके बाद स्कन्ध से शाखाएँ उत्पन्न होती है, शाखाओं से प्रशाखाएँ (छोटी-छोटी डालियां) उत्पन्न होती है और उनसे पत्ते निकलते हैं। इसके बाद उस वृक्ष के क्रमशः पुष्प-फूल, फल और रस उत्पन्न होता है। उसी प्रकार धर्म रूपी वृक्ष का मूल विनय है और उसका सर्वोत्तम फल मोक्ष है। उस विनय रूपी मूल द्वारा विनयवान् शिष्य इस लोक में कीर्ति को और द्वादशांग रूप श्रुतज्ञान को प्राप्त होता है और महापुरुष द्वारा की गई श्लाघा अर्थात् प्रशंसा को प्राप्त करता है। तत्पश्चात क्रमशः अन्त में निःश्रेयस यानी मोक्ष को भी प्राप्त कर लेता है। दर असल जिस आत्मा को शीघ्र मोक्ष प्राप्त करना होता है उसके प्रायोग्य गुण उसमें सहज ही प्रगट हो जाते हैं। आपके जीवन में विनय गुण का प्रस्फुटित एवं विकसित होना मोक्षमार्ग का प्रशस्त होना स्पष्ट करता है।

७. मन्द कषायी - जिस प्रकार आगमकारों ने सर्व विरति संयमी साधकों के लिए मात्र संज्वलन कषाय चौक का सद्भाव बताया है। उसी के अनुरूप पूज्य महात्मा जी म. सा. के कषाय एकदम पतले हो रखे थे। आपके चेहरे पर हमेशा सौम्यता झलकती थी। कभी भी उत्तेजना, उदासीनता की अंश मात्र रेखा आपके चहरे पर दृष्टि गोचर नहीं हुई। आप फरमाते कि कषाय के लिए तो आप की आत्मा मर चुकी है। आप निर्दोष कषाय कुशील नियंट्ठा (संयम) के पालक संत रत्न थे। क्योंकि उत्तम निर्दोष चारित्र पालन करने वालों के लिए वर्तमान में कषाय-कुशील नियंट्ठा ही है। तीर्थङ्कर प्रभु भी जब तक छद्मस्थ अवस्था में रहते हैं तब तक इसी चारित्र का पालन करते हैं। आपका अधिकांश समय अप्रमत्त अवस्था में ही गुजरता था। पूज्य महात्मा जी म. सा. का कषाय इतना क्षीण हो चुका था कि यदि आप मोक्ष प्रायोग्य भूमि में जन्म लेते तो वर्तमान भव से ही मोक्ष प्राप्त कर लेते।

८. तपस्वी - पूज्य महात्मा जी म. सा. मोक्ष मार्ग के जो चार मार्ग (सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप) बताए उन सबके उत्तम कोटि के आराधक थे। आप ज्ञान, दर्शन, चारित्र के साथ तपाराधना में भी पीछे नहीं रहे। प्रायः आप एक ही टाइम गोचरी करते। चातुर्मास के अलावा शेष काल में उपवास बेला, तेला आदि तप करते ही रहते थे। चातुर्मास के दौरान बड़ी तपस्या करते थे। प्रतिवर्ष चातुर्मास में एक-एक उपवास बढ़ाने की आपकी भावना रहती थी। बीमारी आदि के प्रसंग पर चूंकि आपके बाहरी औषधि के तो त्याग थे।

अतएव आप उसके स्थान पर तपाराधन रूपी आभ्यंतर औषधि का सेवन प्रारम्भ कर देते थे। उसी तपाराधना से आपके बीमारी का उपचार सहज ही हो जाता था।

बाहरी तप के साथ आपका आभ्यन्तर तप की ओर विशेष लक्ष्य रहता था। आप आगम में वर्णित **"तवसा धुणइ पुराण पावगं, मण वय काय सुसंवुडे जे स भिक्खू"** यानी मन गुप्ति, वचन गुप्ति और काय गुप्ति से युक्त तपस्या द्वारा पूर्वोपार्जित पाप कर्मो को नष्ट करने में लगे रहते थे।

९. संयम के असली आनन्द के भोक्ता - भगवती सूत्र शतक १४ उद्देशक ९ में निर्दोष शुद्ध संयम के पालन करने वाले साधक के सुखों की देवों के सुखों के साथ तुलना करते हुए बतलाया कि एक मास शुद्ध संयम की पर्याय का पालन करने वाला साधक वाणव्यंतर देवों के सुखों को लांघ जाता है। यानी वाणव्यंतर देवों के सुखों से भी अधिक सुख की अनुभूति करता है। इसी प्रकार दो माह की संयम पर्याय वाला भवनपति देवों के सुखों को, तीन माह की संयम पर्याय वाला असुरकुमारों के सुखों को, चार माह की संयम पर्याय वाला ग्रह नक्षत्र और तारा रूप ज्योतिषी देवों के सुखों को, पांच माह की संयम पर्याय वाला ज्योतिषी के इन्द्र चन्द्र और सूर्य के सुखों को, छह माह की संयम पर्याय वाला सौधर्म और ईशानवासी देवों के सुखों को, सात माह की संयम पर्याय वाला सनत्कुमार और माहेन्द्र देवों के सुखों को, आठ माह की संयम पर्याय वाला ब्रह्मलोक और लांतक देवों के सुखों को, नौ माह की संयम पर्याय वाला महाशुक्र और सहस्रार

देवों के सुखों को, दस माह की संयम पर्याय वाला आणत, प्राणत, आरण एवं अच्युत देवलोक के सुखों को, ग्यारह माह की संयम पर्याय वाला ग्रैवेयक के सुखों को, बारह मास की संयम पर्याय वाला अनुत्तर विमान के देवों के सुखों को लांघ जाता है। इससे अधिक संयम का पालन करने वाले साधकों के लिए तो आगमकारों ने सिद्ध बुद्ध मुक्त होकर समस्त दुःखों का अन्त करने वाला बतलाया है। इन्हीं अखूट आत्मिक सुखों को प्राप्त करने के लिए ही तीर्थंकर, चकवर्ती, बलदेव आदि महापुरुष अतुल भौतिक सम्पदा का त्याग कर इस मार्ग को अंगीकार करते हैं। इन सुखों की अनुभूति वे ही श्रमण निर्ग्रन्थ कर सकते हैं, जो अपना आचरण सर्वज्ञोपदिष्ट आज्ञानुसार करते हैं। इसके विपरीत जो दीक्षा अंगीकार कर भगवान् की आज्ञा के प्रतिकूल आचरण करते हैं, संयम को ताक में रखकर लौकिक कार्यों में रचे पचे रहते हैं, उनका जीवन दिन रात संकल्प विकल्प में ही बीतता है। फलतः संयम के सुखों की अनुभूति के स्थान पर वे दुःखी बने रहते हैं और संसार परिभ्रमण घटाने के स्थान पर बढ़ा लेते हैं।

पूज्य महात्माजी म. सा. ने सांसारिक भौतिक सुख सामग्री को किंपाक फल के सदृश्य छोड़ने योग्य एवं संयम मार्ग को अमृत तुल्य अखूट आत्मिक सुखों का खजाना समझ कर अंगीकार किया एवं उसकी पूर्ण सजगता, सावधानी, अप्रमत्तता एवं मालिक बन कर साधना-आराधना की। फलस्वरूप आपको आगम में वर्णित अनुत्तर विमानवासी देवों से भी अधिक सुखों की अनुभूति संयम साधना काल में रही।

उसी अनुभूति के आधार पर ही आपके अन्तर हृदय से यह शब्दावली निकलती थी कि "जो छह खण्ड की कीमत नहीं वह संयम की कीमत है। जिसका भाग्य चक्रवर्ती से बढ़कर होता है, वे ही भाग्यशाली संयम ले सकते हैं। तीर्थंकर स्वयं राजपाट, घरबार, कुटुम्ब परिवार छोड़ कर संयम अंगीकार करते हैं। संयम ग्रहण करने योग्य है। यदि शक्ति हो, पराक्रम हो, पुरुषार्थ हो, पंडितता हो, बुद्धिमत्ता हो तो संसार को त्यागकर दीक्षा ग्रहण करो। मनुष्य भव में करने योग्य सर्वश्रेष्ठ कार्य यही है। इससे बढ़कर दूसरा कोई उत्तम कार्य नहीं है। जो सुख और आनन्द चक्रवर्ती की छह खण्ड की ऋद्धि में नहीं, वह आनन्द संयम में है आदि।" ऐसी शब्दावली उसी उत्तम साधक के मुख से निकल सकती है जो प्रत्यक्ष में संयम के सुखों का अनुभव करता हो। चूंकि पूज्य महात्माजी म. सा. संयम के सजग प्रहरी थे। अतएव आपको आगम वर्णित संयम के असली आनन्द एवं ठाणांग सूत्र में वर्णित चारों सुख शय्या का भोक्ता कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं हो सकती।

१०. गृहस्थों के सम्पर्क से दूर – जैन श्रमण (निर्ग्रन्थ) के लिए उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा में बताया गया है "**संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो**" यानी साधु संसार के समस्त बाह्य संयोग एवं रागद्वेष कषायादि आभ्यन्तर संयोग से रहित, भिक्षा से अपना जीवन निर्वाह करने वाला होता है। उनका गृहस्थों के साथ सम्बन्ध आहारादि संयमोपयोगी वस्तुएँ लेना, उन्हें धर्मोपदेश, ज्ञान दान देना, उनकी साधना–आराधना में वृद्धि हो, वे

वीतराग मार्ग में आगे बढ़े, उनकी संवर वृत्ति बढ़े इनके लिए प्रेरणा देना आदि प्रवृत्तियों तक ही सीमित होता है। इसके अलावा सांसारिक आरम्भजन्य प्रवृत्तियों में भाग लेना, उनके लिए प्रेरणा देना, उनकी योजना बनवाना, समारोहों का आयोजन करवाना, विषय-कषाय बढ़ने वाली प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करना, अन्यतीर्थी साधु संतों के साथ समन्वय स्थापित करना, सर्व धर्म सम्मेलन का आयोजन करना, गृहस्थों की सेवा लेना देना, आदि समस्त प्रवृत्तियाँ संयम को समूल नष्ट करने वाली है। इसलिए तो जिनेश्वर भगवन्तों ने साधु-साध्वी के लिए गृहस्थ का संसर्ग वर्जित किया है।

आज हमारे साधु-साध्वी समाज में शिथिलाचार बढ़ने, सांसारिक आकर्षण उत्पन्न होने का मुख्य निमित्त यदि कोई है तो गृहस्थों के साथ संसर्ग बढ़ना है। इन्हीं के संसर्ग से साधक वर्ग संसार की विविध प्रवृत्तियों के शौकिन बनते जा रहे हैं। यही संसर्ग उन्हें सावद्य क्रियाओं का प्रेरक, प्रचारक, उत्सव प्रिय बनाता जा रहा है। यह रोग इतना संक्रामक रूप लेता जा रहा है कि उन्हें संयम से खोखला बनाने के साथ, उन्हें मिथ्यात्व में धकेल रहा है। इसलिए तो सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग प्रभु ने अपने केवलज्ञान में देखकर गृहस्थियों से विशेष संसर्ग का वर्जन करते हुए इसके लिए "**छिण्णग्गंथा**" यानी संसार से जोड़ने वाले पदार्थों से विमुक्त "**छिण्णसोया**" लोक प्रवाह में न बहने वाले आदि विश्लेषण लगाए हैं। इसके अलावा "**सिएहिं असिए भिक्खु**" अर्थात् गृहस्थों में मूर्च्छा न रखता हुआ भिक्षु विचरे। "**महयं परिगोवं जाणिया**"

यानी सांसारिक जीवों के साथ परिचय महान कीचड़ है, यह जान कर मुनि उनके साथ परिचय न बढ़ावे आदि वाक्यों द्वारा गृहस्थ परिचय का निषेध किया है।

आगमकारों ने संसारी प्राणियों के साथ परिचय बढ़ाने के लिए "**परिगोप**" शब्द प्रयुक्त किया है, जिसका आशय प्राणियों को अपने में फंसा लेना है। परिगोप दो प्रकार का बताया है। एक द्रव्य परिगोप दूसरा भाव परिगोप। कीचड़ को द्रव्य परिगोप कहा है और संसारी प्राणियों के साथ परिचय या आसक्ति को भाव परिगोप बताया है। अतएव मुनि को इसके स्वरूप और विपाक को समझ कर इनके संसर्ग का त्याग कर देना चाहिए।

पूज्य महात्माजी म. सा. का रात दिन के चौबीस घंटों में से रात्रि के मात्र चार घन्टे निद्रा अथवा आवश्यक साध्वोचित कार्यों के अलावा शेष समय स्वाध्याय-ध्यान, आगम वाचन, व्याख्यान, धार्मिक साधना-आराधना में ही गुजरता था। आपका गृहस्थों से सम्बन्ध मात्र ज्ञान-ध्यान सीखने सिखाने, स्वाध्यायादि फेरने तक ही सीमित था। इसके अलावा गृहस्थ सम्बन्धी कोई बात करना आपको रत्तिभर रुचिकर लगती ही नहीं था। चूंकि आपने तो उत्तराध्ययन सूत्र की इस गाथा के भावों को "**चरे पयाइं परिसंकमाणो जं किंचि पासं इह मण्णमाणो**" अर्थात् पग-पग पर संयम में कही दोष न लग जाय इस प्रकार शंका करता हुआ साधक इस लोक में गृहस्थ के साथ जो कुछ थोड़ा भी परिचय आदि है, उसे संयम के लिए पाश रूप मानता हुआ विचरे, पूर्ण रूपेण आत्मसात कर रखा

था। अतएव संयम में पूर्ण सजगता एवं गृहस्थ सम्पर्क से निर्लिप्त रहते हुए विचरण कर आपने आगम आज्ञा का अक्षुण्ण पालन किया।

११. गुणानुरागिता - पूज्य महात्मा जी म. सा. के पास कोई भी व्यक्ति जाता चाहे वह बालक हो, जवान हो या वृद्ध, धनवान् हो या गरीब, प्रमुख हो या सामान्य, सभी के साथ, हमेशा आत्मीयता भरा व्यवहार रहता था वे कभी भी किसी की उपेक्षा नहीं करते थे। इतना ही नहीं आने वाले व्यक्ति के सामान्य गुणों का आदर पूर्वक सम्मान कर प्रशंसा कर उनके उत्साह में और गुणों में अभिवृद्धि करते। सम्पर्क में आने वाला व्यक्ति भी पूज्य महात्मा जी म. सा. के मधुर शब्दों को सुन कर धन्य बन जाता और आत्म विकास में वेगवंत बन जाता। आप छोटे-छोटे साधुओं के प्रति भी इतना ही आत्मीयता भरा और विनय युक्त व्यवहार करते कि सभी संत आप के साथ रहने को सदैव तत्पर रहते।

अनेक संप्रदाय के पूज्य संत सतियाँ आप के दर्शन व्याख्यान वाचणी आदि का लाभ लेने आते। उनके साथ भी आप का व्यवहार कभी भी उपेक्षापूर्वक नहीं होकर सदैव आत्मीयता पूर्वक ही रहता। आप उनमें रहे हुए सद्गुणों का गुणानुवाद करना कभी भी नहीं चूकते थे।

१२. सरलता - पूज्य महात्मा जी म. सा. में रही हुई छोटे बालक जैसी सरलता सभी को आकर्षित कर देती। कहीं भी कपट भरा व्यवहार नहीं, कही भी माया सहित बात नहीं। वाचणी चलती हो अनेक पूज्य साधु साध्वी श्रावक-श्राविका

बैठे हुए हों उनमें से कोई प्रश्न पूछे और प्रश्न भी सामान्य हो और कदाचित् उन्हें जवाब नहीं आता हो तो छोटे बालक की तरह सरलता से कह देते कि मुझे आता नहीं, मुझे ख्याल नहीं, इतना ही नहीं साथ बैठे हुए छोटे संतों को कह देते - "मुनिराज! आपको इसका उत्तर आता हो तो फरमाओ।"

१३. निःस्पृहता - आप स्वयं कोई इच्छा नहीं रखते। बड़े संतों के साथ होते तो उनकी इच्छा-आज्ञानुसार ही रहते किन्तु साथ में छोटे संत हो और कोई भी प्रसंग-बातचीत-निर्णय लेने का हो, चाहे वह गोचरी बाबत हो या व्याख्यान वाचणी बाबत हो या विहार बाबत हो या चातुर्मास से संबंधित हो। आपने कभी अपनी इच्छा-भावना रखी ही नहीं। जब साथ वाले संतों की क्या भावना है? तदनुसार ही आप करते। साथ वाले संत विनय पूर्वक आपकी भावना जानने की कोशिश करते तब भी आत्मीयता पूर्वक व्यवहार कर आप निर्णय उन्हीं पर छोड़ देते किन्तु अपनी कोई इच्छा प्रदर्शित नहीं करते क्योंकि जब तक इच्छा है तब तक मोक्ष नहीं, यह बात आपने अच्छी तरह समझ रखी थी अतः किसी भी विषय में किसी प्रकार की इच्छा आप रखते ही नहीं थे।

१४. आचार पालन की दृढ़ता - पूज्य महात्मा जी म. सा. जिनेश्वर भगवान् द्वारा फरमाई हुई आज्ञा के अनुसार आचार का पालन करने में सदैव तत्पर रहते थे। साधुओं के लिए प्रभु ने जिन-जिन आचारों के पालन करने की आचारांग सूत्र, सूयगडांग सूत्र, दशवैकालिक सूत्र आदि में आज्ञा फरमाई है उनका शुद्ध पालन करने में आप सदा जागृत रहते। संयमी

जीवन में एक भी दोष नहीं लगे, इसकी आप सदैव सावधानी रखते। आप बारबार फरमाते कि – "**मरना मंजूर परन्तु दोष लगाना मंजूर नहीं।**" – इस प्रकार आप कहते ही नहीं किन्तु जीवन के अंतिम श्वास तक इसका दृढ़ता पूर्वक [illegible] कर दिखाया। आपके आचार पालन की इतनी दृढ़ता के कारण ही सभी संत सती आपको आदर पूर्वक – "**[illegible] आचारांग–चलता फिरता आचारांग**" कहते।

"**अरिहंत मेरे अंतर में और संथारा मेरे [illegible]**" – यह वाक्य आप बारबार बोलते–तदनुसार आपने अरिहंत की आज्ञा को अपने हृदय में बसाली और [illegible] आचारों का दृढ़ता पूर्वक पालन किया।

१५. **परीषहजयी** – पूज्य महाराज [illegible] "**देहदुक्खं महाफलं**" आगम वाक्य को [illegible] रखा था। अतएव आप आने वाले [illegible] भाव से सहन करने को महान् निर्जरा का हेतु मानते थे। क्योंकि आगमकारों ने शारीरिक कष्टों को समभाव पूर्वक सहन करने से मोक्ष रूपी महान् फल की प्राप्ति बताई है। अतएव आपके संयमी जीवन में जब-जब भी परीषह का प्रसंग उपस्थित हुआ, आपने उन्हें [illegible] निर्जरा का कारण मान कर उत्साह और [illegible] के साथ उन्हें सहन किया। दीक्षा से पूर्व आपके कोमल [illegible] शरीर को देखते हुए कई गुजराती संत-सतियों ने [illegible] आहार–पानी की [illegible] जी म. सा. को [illegible]

आपने उत्तर में फरमाया कि ये सब कष्ट तो शरीर को होने वाले हैं। आत्मा को ये कष्ट होने वाले नहीं है। मैंने तो शरीर का मोह त्याग कर आत्मा को उज्ज्वल बनाने के लिए उधर दीक्षा लेना तय किया है।

दीक्षा से पूर्व गृहस्थावस्था में जिस श्रमणोपासक ने आत्मा और शरीर के भेद विज्ञान को इतनी गहनता से समझ लिया हो उसके लिए संयम के परीषह, परीषह न होकर मोक्ष का अक्षय सुख दिलवाने वाले होते हैं। इसीलिए तो पूज्य महात्मा जी म. सा. के विकट से विकट परीषह के समय भी चेहरे पर अद्‌भुत सौम्यता और प्रसन्नता झलकती रहती थी। सोजत रोड़ चातुर्मास की घटना है कि पूज्य महात्मा जी म. सा. को १०४-१०५ डिग्री बुखार चल रहा था। शरीर कांप रहा था। असहनीय वेदना थी। संथारे की स्थिति बनी हुई थी। पूज्य श्रुतधर प्रकाशचन्द जी म. सा. ने बालोतरा से विहार भी कर दिया। ऐसी स्थिति में दवा लेना तो दूर, दवा के निमित्त से गर्म जल भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया। बल्कि उसके स्थान पर तपस्या करना चालू कर दिया। शायद आठ अथवा नौ की तपस्या होने पर अपने-आप आपका बुखार समाप्त हो गया। यही बात अभी जामनगर स्वर्गवास से पूर्व बनी। स्वर्गवास से पूर्व आपके असह्य वेदना हो रही थी, पर चेहरे पर वही अद्‌भूत सौम्यता, प्रसन्नता झलक रही थी। उसी सौम्यता प्रसन्नता से साधना में लीन रहते हुए आपने देह का त्याग किया। ऐसा था पूज्य महात्मा जी म. सा. का परीषयजयी जीवन।

१६. जिनाज्ञा पालकता - जैन धर्म का साधु वही हो सकता है जो जैनागमों पर पूर्ण श्रद्धा रखें एवं उनमें वर्णित आचार संहिता का पालन करे। जो जिनाज्ञा को आदरणीय नहीं माने अथवा उसके अनुरूप आचरण नहीं करे वह जैन साधु हो ही नहीं सकता। पूज्य महात्मा जी म. सा. का जीवन आगमों में वर्णित प्रभु महावीर के अन्तेवासी श्रमण वर्ग के सदृश्य था। आपके प्रत्येक आत्म-प्रदेश में आचारांग सूत्र का यह वाक्य "**आणाए मामगं धम्मं**" यानी "प्रभु आज्ञा का पालन ही धर्म है" समाया हुआ था।

आपको आगमों में वर्णित साधु-समाचारी से अणुमात्र भी आगे-पीछे चलना मंजूर नहीं था। आप "णिग्गंथं पावयणं पुरओ काओ विरई" आगम वाक्य को आगे रख कर विचरण करते थे। आपकी दृढ़ मान्यता थी कि "**अणाणाए एगे सोवट्ठाणे अणाए एगे णिरुवट्ठाणे, एतं ते मा होउ एयं कुसलस्स दंसणं**" (आचारांग सूत्र) अर्थात् जिनाज्ञा के बाहर की क्रिया में किया गया समस्त उद्यम और जिनाज्ञा के पालन में किया गया आलस्य दोनों ही संयम के लिए घातक है। क्योंकि सर्वज्ञ भगवान् के दर्शन में अणुमात्र आगे पीछे आचरण करना विराधना का कारण है। इसलिए तो आपके अन्तरंग से यह ध्वनि गुंजित होती थी कि "**मरना मंजूर है पर संयम में दोष लगाना मंजूर नहीं।**" "**किं परम मरणं सिया**" यानी मरने से ज्यादा और क्या होने वाला है। विराधक अवस्था में तो जीव ने अनन्त जन्म मरण किए हैं। अब तो आराधक होकर ही पंडित मरण से मरना है। तदनुरूप

आपने तीसरे मनोरथ को सफल करके दिखाया। जीवन के अन्तिम समय में जब आपको असह्य वेदना हो रही थी, उस समय जामनगर संघ के प्रमुख श्री चम्पकभाई ने आपको बाह्य उपचार लेने की विनति की तो पूज्य महात्माजी म. सा. प्रत्युत्तर में कहा कि "**तमारा जेवा श्रावक संयम मां ढीला पड़वानी वात करे, अे ठीक नहीं, मारे तो आराधक थवुं छे, माटे आवी कोई ढीली वात न करशो।**" आप फरमाते कि अरिहन्त मेरे अन्तर में है। आपका एक मात्र ध्येय उववाई सूत्र में वर्णित "**कम्म-णिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिया**" यानी कर्मों को नष्ट करने के लिए ही साधुता अंगीकार की जाती है रहा। इसी ध्येय को रखते हुए पूज्य महात्मा जी म. सा. ने जीवनपर्यन्त उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते, हर समय यानी आपका प्रत्येक श्वासोच्छ्वास जिनाज्ञा, जिनवाणी युक्त रहा।

१७. गुरु आज्ञा शिरोधार्य - पूज्य महात्मा जी म. सा. ने जिस प्रकार जिनाज्ञा को हृदयंगम कर रखा था, उसी भांति गुरु आज्ञा भी आपके लिए सर्वोपरि थी। दीक्षा लेने के पश्चात् आपने अपनी समस्त इच्छाओं को पूज्य गुरु भगवन्तों के श्री चरणों में समर्पित कर दी थी। स्वयं की कोई इच्छा रखी ही नहीं। जैसा गुरुदेव फरमावे उसे बिना किसी ननूनच के शिरोधार्य करना ही उनकी एक मात्र इच्छा रहीं। इतना ही नहीं। गुरुदेव की आज्ञा की अणुमात्र भी अवहेलना न हो इसका आप पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। एक बार का प्रसंग कि आपको गुजरात क्षेत्र फरसने की गुरु देव ने आज्ञा फरमाई।

गुजरात क्षेत्र में पधारने के पश्चात् उस गुजरात क्षेत्र को फरसते हुए रास्ते में यदि अन्य कोई राज्य का गांव आने वाला होता तो उस रास्ते को आप छोड़ देते और दूसरे रास्ते से जिससे मात्र गुजरात-गुजरात के ही गांव आवे उस रास्ते से पधारते। आपका कहना था कि जब गुरुदेव ने गुजरात फरसने का कहा तो दूसरे स्टेट के गांव को कैसे फरसे? साथ वाले संत कहते कि अपन फरसने के हिसाब से अन्य राज्य के गांव में नहीं जा रहे हैं। गुजरात फरसते हुए रास्ते में आ गया इसलिए वहाँ जा रहे है। पर महात्मा जी म. सा. तो गुरुदेव आज्ञा का पालन अक्षुण्ण हो इसका पूरा ध्यान रखते थे।

इतना ही नहीं गुरु आज्ञा अनुसार आहार विहार करते यदि विकट परीषह आ जाता तो उस समय आप विशेष रूप से भाव विभोर होकर उन परीषहों को महान् निर्जरा का निमित्त मानते थे। एक समय आपका विहार मेवाड़ की ओर हुआ। पूज्य तपस्वीराज ने फरमाया कि अमुक सड़क मार्ग से पधारेगे तो इतना पडेगा और सीधा पगडंडी मार्ग से पधारेगे तो ५-७ किलो मीटर कम पडेगा। पूज्य महात्मा जी म. सा. ने पगडंडी का मार्ग अपनाया। उस मार्ग में कुंकर, पत्थर, कांटे आदि का काफी परीषह रहा। किन्तु साथ वाले संत बता रहे थे कि महात्मा जी म. सा. उस रास्ते पधारते हुए इतने भाव विभोर हुए एवं गुरुदेव का गुणगान करने लगे कि देखो पूज्य गुरुदेव ने हमे पगडंडी का मार्ग बताकर महान् निर्जरा का मौका दिया। ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण आपके गुरु आज्ञा के अक्षुण्ण पालन करने के रहे। इसका कारण था कि

आपके हृदय पटल पर दशवैकालिक सूत्र अध्ययन ९ की गाथा २४ के भाव अंकित हो रखे थे।

णिद्देसवित्ती पुण जे गुरुणं।
सुयत्थधम्मा विणयम्मि कोविया।
तरित्तु ते ओघमिणं गुरुत्तरं।
खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गया॥ २४॥

अर्थात् - जो गुरु महाराज की आज्ञा का यथावत पालन करने वाले है, तथा जो श्रुतधर्म के गूढ तत्त्वों को जानने वाले हैं और जो विनय पालन में चतुर होते हैं वे इस दुस्तर संसार रूपी समुद्र को तिरकर और कर्मों का क्षय कर के सर्वोत्तम सिद्धि गति को प्राप्त करते हैं। उपरोक्त गुणों को धारण करने वाले पुरुषों ने गत काल में सिद्धिगति प्राप्त की है और भविष्य में भी मुक्ति प्राप्त करेंगे। चूंकि पूज्य महात्माजी म. सा. को सिद्धिगति की और बढ़ना ही था। अतएव इस गाथा का अनुसरण करना स्वाभाविक था।

१८. औषध उपचार निषेध - संसाार अवस्था में दमे की बीमारी होने पर भी यावज्जीवन के लिए दवा के प्रत्याख्यान कर लिये। संयमी जीवन में यह दृढ़ता विशेष रूप से प्रकट हुई। संयमी जीवन में निर्दोष औषधीय उपचार का भी आप सदैव निषेध करते, इतना ही नहीं दवा के निमित्त से हल्दी, सूंठ, बाम, गरम पानी तक का भी उपयोग नहीं करते।

१९. समय पालनता - जीवन में किसी भी क्षेत्र में विकास के लिये समय पालन अति आवश्यक है। पूज्य महात्मा जी म. सा. में यह गुण स्पष्ट देखने को मिलता था। आप व्याख्यान, वाचणी स्वाध्याय आदि निश्चिय किये हुए

समय पर ही प्रारम्भ करते और समय पूरा होते ही उसे पूरा कर देते। १० बजे व्याख्यान पूर्ण करना होतो दस बजे ही व्याख्यान पूर्ण कर देते। आपके इस गुण के कारण ही कई श्रावक-श्राविका नियमित व्याख्यान का लाभ ले पाते थे।

२०. सबके प्रिय - पूज्य महात्माजी म. सा. के उत्तम ज्ञान, दर्शन, चारित्र की साधना आराधना की कीर्ति भारत के चारों दिशाओं में फैल रखी थी। साथ ही आपका व्यवहार सभी के साथ बिना किसी लाग लपेट के इतना आत्मीयता एवं सौहार्दपूर्ण रहता कि किसी भी गच्छ अथवा सम्प्रदाय का साधु-साध्वी, श्रावक श्राविका, आपको उच्च आदर्श क्रिया पालक साधक की दृष्टि से देखते थे। जिन-जिन क्षेत्रों में आपका विचरण हुआ वे चाहे किसी भी सम्प्रदाय अथवा परम्परा के मानने वाले क्यों न हो आपके अद्वितीय जीवन की अमिट छाप उन पर पड़े बिना न रही, चाहे वह क्षेत्र दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, उत्तरप्रदेश रहा अथवा राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात। गुजरात के संत सती तो आपको चलता फिरता आचारांग एवं भगवान् मानते थे। एक बार जिस किसी ने आपके दर्शन कर लिए वह तो आपके आदर्श जीवन से आश्चर्य चकित हुए बिना न रहा। उत्तम ज्ञान दर्शन चारित्र के साथ आपके आदेय नाम कर्म का उदय था कि आपका एक-एक शब्द जन-जन को आकर्षित करने वाला होता था। सभी ऐसा महसूस करते की आप थोड़ा और बोले तो अच्छा। इस प्रकार आप गृहस्थ जीवन से लेकर संयमी जीवन तक सबके प्रिय रहे।

२१. जंगम आचारांग - पूज्य महात्मा जी म. सा. श्रमणोचित मर्यादा के परिपालन में श्रमणोत्तम थे। आगमोक्त मर्यादा के निर्वाह के वे सजग प्रहरी थे। आचारांगादि सूत्र में वर्णित जैन साधु के आचार विचार के आपमें प्रत्यक्ष दर्शन होते थे। आपके संयमी जीवन को देखकर तो जैनागमों में वर्णित साधु के आचार-विचार पर संशय (अविश्वास) रखने वाला व्यक्ति भी थोड़ी देर के लिए तो विचार करने लग जाता कि इस विषम काल में भी इतनी उत्तम क्रिया के पालन करने वाले मौजूद हैं, तो प्रभु महावीर के समय उत्कृष्ट क्रिया पालक हो इसमें संशय की कोई बात नहीं।

गुजरात में तो आपके आचार-विचार से वहाँ के साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका इतने प्रभावित थे कि भगवान् के समान बहुत ही उच्च एवं पूजनीय भाव से आपका आदर सम्मान करते। सामान्य दिनों में सैकड़ों हजारों की तादाद में जन-सैलाब आपके दर्शनार्थ उमड़ता था। वहाँ के संत-सती-वर्ग तो आगे से आगे उस मुकाम का ध्यान रखते जहाँ महात्मा जी म. सा. पधारने वाले होते।

जब आप आचारांगादि सूत्रों की वाचना फरमाते तो सुनने वालों का हृदय गद्गद् हो जाता। आगम के शब्दों में जो रहस्य भरा होता उसे इस प्रकार खोलते कि सुनने वाले दंग रह जाते। गुजरात में दोपहर की वाचना में ३०-४० सतियों की उपस्थिति तो सामान्य बात थी। कई बार तो यह उपस्थिति ८० से १०० तक पहुँच जाती। अहमदाबाद में बिन्दु बहन की दीक्षा के प्रसंग पर तो लगभग १३५ संत-सती

उपस्थित थे। आपके आगम वाचन से प्रभावित होकर अनेक गुजराती संत-सतियों ने अपने आचार-विचार में परिवर्तन कर दिया तथा आपके आचरण एवं उपदेश से प्रभावित होकर लगभग एक सौ भाई बहनों ने साधु-साध्वी जीवन अंगीकार कर लिया।

आपका संयमी जीवन इतना उत्तम, निर्मल एवं निरलिप्त था कि किसी भी सम्प्रदाय के कोई भी संत-सती अपने वैरागी, वैरागिन भाई-बहिन को आपके पास ज्ञान ध्यान सीखने, आगम वाचन लेने के लिये भेजने में किंचित् मात्र भी संकोच नहीं करते थे। आपके विशिष्ठ संयमी जीवन से प्रभावित होकर संत-सती वर्ग आपको चलते-फिरते आचारांग कहते थे।

२२. ईर्या समिति का दृढ़ता पूर्वक पालन - पूज्य महात्मा जी म. सा. ईर्या समिति का दृढ़ता पूर्वक किस प्रकार पालन करते थे, इसके कुछ प्रसंग इस प्रकार है -

१. संवत् २०५४ (१९८८) के चातुर्मासार्थ राजकोट से जामनगर की ओर पधार रहे थे। मार्ग में राजकोट से कालावड़ तक के विहार में कालावड़ से लगभग २ किमी दूर थे कि योगानुयोग से कालावड संघ के प्रमुख श्री प्रफुल्लभाई मेहता महात्मा जी म. सा. के साथ विहार में थे। विहार में हाइवें ऊपर ईर्यासमिति का पालन करते हुए रोड़ की एक तरफ धीरे-धीरे चल रहे थे। चलते-चलते एक स्थान पर थोड़ी देर रुके और फिर साईड में चलने के बजाय रोड के बीच में पांच सात कदम चले। हाईवे पर ट्राफिक बहुत था। रोड़ पर

तेजी से चलते वाहनों को देख कर श्री प्रफुल्लभाई ने पूज्य श्री जी से विनति की कि – 'महात्मा जी म. सा.! इस रोड के बीच चलना ठीक नहीं अपने बचाव के लिए साईड में चलना जरूरी है ताकि दुर्घटना का डर नहीं रहे।' यह सुनकर पूज्य महात्मा म. सा. खडे रह गये और प्रफुल्लभाई की ओर देख कर बोले – 'प्रफुल्लभाई! मैं तो इसी प्रकार चलूंगा' और पुनः दो चार कदम चल कर सडक पर आ गये और ईर्या समिति पूर्वक चलने लगे॥ श्री प्रफुल्लभाई को यह सुन कर आश्चर्य हुआ। महात्मा जी म. सा. का ऐसा करने का कारण जानने के लिए वे जहाँ से पूज्य श्री जी ने रास्ता बदला वहां गये और देखा कि उस स्थान पर बहुत सारे मकोड़ों की पंक्तियाँ चल रही थी। अपने से एक भी मकोड़े की विराधना नहीं हो जाय, इसकी पूरी सावधानी रखते हुए अपना एक एक दम नीचे देखते हुए रखे, मार्ग में बात करना आवश्यक हो तो चलते हुए बात नहीं करते हुए उस स्थान पर खड़े हो जाय, ऐसे संत "महात्मा" के रूप में पूजे जाय, इसमें आश्चर्य ही क्या? – इस प्रकार प्रफुल्लभाई के मन में विचार उत्पन्न हुए।

चातुर्मास पूर्ण होने के बाद पूज्य श्री राजेशमुनि जी श्री भद्रिकमुनि जी म. सा. आदि ठाणा जब कालावड पहुँचे तब उनके दर्शनार्थ श्री चंपकभाई भी गये तब उपरोक्त प्रसंग भाव विभोर बन कर सुनाते हुए श्री प्रफुल्ल भाई बोले कि – "ऐसे आदर्श संत के साथ थोड़ा सा भी विहार करके मैं तो धन्य हो गया और मुझे अपने जीवन में उत्तम से उत्तम लाभ प्राप्त करने का आनंद प्राप्त हुआ।" इस प्रकार इस युग के भगवान्

स्वरूप पूज्य महात्मा जी म. सा. को अपने दिल में स्थापित कर दिया। यह प्रसंग सुन कर श्री चम्पकभाई तथा उनके साथ सुनने वाले अन्य श्रावकों के मस्तक पूज्य महात्मा जी म. सा. को याद कर झुक गये।

२. बडौत (उ. प्र.) निवासी श्री भारतभूषण जी जैन लिखते हैं कि - महात्मा जी एक अद्‌भूत आत्मा थी। बडौत (उ. प्र.) के सन्‌ १९९३ के चातुर्मास में महाराज को निकट से जानने व सुनने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। महाराज श्री के प्रवचन में शास्त्र की गाथाओं के विवेचन के अलावा अन्य कहानी, कभी सुनने को नहीं मिले आप जब प्रवचन करते थे तो ऐसा लगने लगता था कि महाराज श्री सभी को मोक्ष में सीधे ले जा रहे हैं।

बडौत से चातुर्मास के बाद विहार छपरौली की तरफ किया। मैं विहार में महाराज श्री के साथ चल दिया। महाराज श्री ने बाकी पूज्य सन्तों से पहले ही विहार किया क्योंकि महाराजश्री की चाल कम थी। धीरे-धीरे जब महाराज श्री मलखपुर गाँव के पास पहुंचने वाले थे। एकाएक महाराज श्री से मैंने पूछा- महाराज श्री ! आपको वैराग्य किस कारण से उत्पन्न हुआ था? महाराज श्री ने फरमाया विहार में मुझे बोलना नहीं कल्पता परन्तु प्रश्न वैराग्य का है अतः वे रुक कर बोले-"मैं बम्बई में दुकान पर पुस्तक पढ़ रहा था उसके पढ़ते-पढ़ते मैंने मन में साधु बनने का विचार बना लिया।" धन्य है ऐसी आत्मा जो साधु मर्यादा का बोध भी कराते तथा उत्तर भी देते थे।

जैसे महाराज श्री का विहार राजस्थान की तरफ हुआ। कुछ विशेष कारण से रास्ते में समय अधिक लग गया। तब दो सन्तों के साथ महात्मा जी आगे चले क्योंकि गर्मी का समय बढ़ रहा था तथा विहार लम्बा था। रास्ते में आहार, पानी, ठहरने की कम जगह थी। उसी बीच महाराज श्री को रास्ते में कीडी-मकोड़े अधिक मिले तथा सड़क पर चलना सम्भव नहीं था। महाराज श्री ने अपना रास्ता जीवों की रक्षा के कारण बदल दिया और लम्बा रास्ता लेकर अपनी विहार यात्रा जयपुर की ओर प्रारम्भ की। गर्मी अधिक बढ़ने लगी तथा पहले रास्ते की अपेक्षा इस रास्ते में आहार पानी ओर कठिन हो गया। ऐसे क्षणों में वे फरमाते - यह समय संयम को चमकाने का तथा परीषह सहन करने का है। मैंने इस घटना को नजदीक से देखा था।

ऐसे महात्मा जो मच्छर दानी नहीं लगाते तथा बीमारी चोंट आदि में दवाई नहीं लेते थे। अपने जीवन के ५४ वर्ष में साधु बहुत देखे तथा विहार में बहुत रहा था परन्तु किसी अन्य सन्त को ऐसी क्रिया पालते नहीं देखा।

३. सौराष्ट्र कच्छ में विहार के समय जब विनय मुनि जी साथ में थे। कच्छ का रेतीला क्षेत्र पार करते समय सूर्य की प्रचण्ड तेज गर्मी व नीचे बालु रेत की गर्मी दूर-दूर तक कहीं कोई वृक्ष भी नहीं, गर्मी की अत्यधिक वेदना से प्यास के कारण कंठ सूख गये, आगे चलने की हिम्मत जवाब दे दिया। सागारी संथारा ग्रहण कर लिया स्वयं की आत्मा को

धिक्कारने लगे- "जयंती ! तू व्याख्यान व वाचनी देते समय गरजता था "किं परम मरणं सिया" धिक्कार है तुझे नरक में तिर्यच में कितनी प्यास सहन कर के आया, यहाँ इस शरीर के लिए प्यास के मारे चल विचल हो रहा है।"

इस वर्ष भी कच्छ गुजरात में विहार करते समय तीन माह पूर्व जब तूफान आया था, आंधी के कारण एक दम अंधेरा छा गया, कुछ भी नजर नहीं आ रहा था, कहीं जीवों की अयतना न हो जावे एक पत्थर की शिला पर खड़े-खड़े समय निकाला। हर समय संयम के प्रति पूर्ण सजगता रखते थे।

ऐसे अद्‌भूत योगी, महावीर के सच्चे सैनानी जिनके सम्पर्क में आने से गुजरात की सम्प्रदायों के अनेक साधु साध्वियों ने आपकी निर्दोष संयम चर्या देखकर अपने संयम पालन के दोषों को त्यागकर प्रभु आज्ञानुसार निर्दोष संयम पालने लगे है।

२३. लोकैषणा त्याग - पूज्य महात्मा जी म. सा. प्रशंसा और प्रसिद्धि से सदैव दूर रहते थे। लोगों के मान सन्मान को वे कीचड़ के समान समझते थे। इस गुण को प्रकट करने वाला एक प्रसंग इस प्रकार है -

वर्धमाननगर (रणजीतनगर-जामनगर) के अंतिम चातुर्मास में संवत्सरी महापर्व का दूसरा दिन था। चातुर्मासार्थ विराजित पूज्य महात्मा जी म. सा. आदि संत, गोंडल संप्रदाय के पूज्य श्री राजेशमुनि जी म. सा. आदि संत और महासती श्री गुणबाला जी म. सा. आदि व्याख्यान में विराजित थे। पूज्य श्री भद्रिकमुनि जी म. सा. के सांसारिक पिताजी

श्री कनकमल जी तलेसरा आदि मेहमान भी पूज्य महात्मा जी म. सा. का लाभ लेने हेतु पर्युषण पर्व में पधारे हुए थे। संघ प्रमुख श्री चंपकभाई ने भावविभोर होकर व्याख्यान बाद कहा कि – "हम सौभाग्यशाली है कि ज्ञानगच्छाधिपति पूज्य तपस्वीराज श्री चम्पालाल जी म. सा. श्रुतधर पं. र. श्री प्रकाशमुनि जी म. सा. की महान् कृपा से पूज्य महात्मा जी म. सा. का चातुर्मास हमें प्राप्त हुआ। अतः हम सभी को एक एक प्रत्याख्यान ग्रहण करना चाहिये ताकि प्रतिदिन पूज्य महात्मा जी म. सा. की याद बनी रहे।" तत्पश्चात् श्री संघ के युवा कार्यकर्त्ता श्री अजयभाई दोशी ने खड़े हो कर उपस्थित सभी श्रावक-श्राविकाओं से विनति की कि वे सब अपने अपने मन में एक-एक पच्चक्खाण का निश्चय कर ले। पूज्य महात्मा जी म. सा. सभी को प्रत्याख्यान कराते हैं।

यह सुनते ही पूज्य महात्मा जी म. सा. पाट पर से नीचे उतर गये और बोले कि – "**सब मुझे याद करें, ऐसे पच्चक्खाण मैं नहीं कराऊँगा।**"

पूज्य महात्मा जी म. सा. के शब्द सुनते ही सभी नतमस्तक हो गये। कहां हम सब की लौकेषणा और मान सम्मान की ओर अंधी दौड़ और कहाँ इस महापुरुष द्वारा उसकी घोर उपेक्षा!!

पूज्य महात्माजी म. सा. के गुणों का कहां तक वर्णन किया जाय, आपके गुणों का वर्णन करते हुए हमारा ध्यान प्रभु महावीर के अन्तेवासी उन सर्वत्यागी स्थविर भगवन्तों के गुणों एवं विशेषणों की ओर चला जाता है, जहां आगमकारों ने उनके लिए बताया कि वे जाति सम्पन्न, कुल सम्पन्न, बल

सम्पन्न, रूप सम्पन्न, विनय सम्पन्न, ज्ञान सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, चारित्र सम्पन्न, लज्जा सम्पन्न, लाघव सम्पन्न, नम्रतायुक्त, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी थे। उन्होंने क्रोध मान माया और लोभ को जीत लिया था। उनकी इन्द्रियाँ उनके वश में थी। उन्होंने निद्रा क्षुधादि परीषहों को जीत लिया था। जीने की आशा और मृत्यु का भय तो उन्हें था ही नहीं। वे मुनि पुंगव, व्रत में प्रधान और गुणों में संसार के सभी साधुओं में उच्च स्थान धराने वाले थे। वे इन्द्रिय निग्रह अथवा दोषों को दूर करने में कुशल थे। व्यवहार में रहते हुए भी उनका लक्ष्य निश्चय की ओर ही रहता था। वे संत प्रवर सरलता, नम्रता, लघुता, क्षमा, निर्लोभता, में बढ़े चढ़े थे। उनकी आत्मा चारित्र गुण से गहरी रंगी हुई थी। उनकी उत्सुकता, चंचलता बहुत कुछ नष्ट हो चुकी थी आदि अनेक उत्तम गुणों से युक्त प्रभु महावीर सर्वविरति साधक थे। जिन भाग्यशाली आत्माओं ने पूज्य महात्माजी म. सा. के जीवन को नजदीक से देखा है, परखा है, अवलोकन किया है, वे बिना किसी संशय के कह सकते हैं कि प्रभु महावीर के अन्तेवासी स्थविर भगवन्तों के जो गुण एवं विशेषण आगमकारों ने बताए हैं, वे अधिकांश सभी गुण एवं विशेषताएं पूज्य महात्माजी म. सा. में मौजूद थी।

ज्ञानियों की दृष्टि में जीवन का सार है –

सारं दंसण नाणं सारं, तप नियम संजमं सीलं।
सारं जिणवर धम्मं, सारं संलेहणा पंडिय मरणं॥

पूज्य महात्मा जी म. सा. ने सभी सार भूत तत्त्वों को

जीवन में स्थान देकर अपना जीवन सार्थक बना दिया और वे सभी के लिए वंदनीय पूजनीय बन गये। आज शरीर से भले ही पूज्य महात्मा जी म. सा. नहीं रहे परंतु उनका आदर्श जीवन युगों युगों तक साधकों के लिये प्रकाश स्तंभवत् प्रेरणा प्रदान करता रहेगा। पूज्य महात्मा जी म. सा. के गुण हमारे जीवन में भी उतरें और हम भी मोक्ष के नजदीक बने। यही उस महापुरुष के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

श्रीमती लाभु बहन और भावना बहन की दीक्षा

आपकी धर्म सहायिका श्रीमती लाभु बहन पहले से ही वैराग्य रंग में रंगी हुई थी, मात्र अपनी इकलौती सन्तान भावना बहन के कारण संसार में रूकी हुई थी पर भवितव्यता कुछ ऐसी थी कि पूरा का पूरा परिवार दीक्षित होना था। अतएव भावना बहन की भी अपने नाम के अनुरूप दीक्षा लेने की भावना जगी। लिखते हुए प्रमोद होता है कि इन दोनों वीरांगना बहनों की भागवती दीक्षा पूज्य तपस्वीराज श्री चम्पालाल जी म. सा. के मुखारविन्द से बिना किसी आडम्बर के पूर्ण सादगी के साथ मिती चैत्र सुदी ६ दिनांक २२-३-८० को **ब्यावर** नगर में सम्पन्न हुई। पूज्य श्रमण श्रेष्ठ एवं तपस्वीराज श्री चम्पालाल जी म. सा. के पास अनेक मुमुक्षु आत्माएँ जो सपरिवार दीक्षित हो रखे हैं। उनमें से आपका भी एक आदर्श परिवार है। जिनके परिवार में मात्र तीन सदस्य थे और तीनों ने ही आदर्श कठोर क्रिया पालक ज्ञानगच्छ में दीक्षा अंगीकार की।

जामनगर का चरम चातुर्मास

श्री संघ के महान् पुण्योदय से ज्ञानगच्छाधिपति तपस्वीराज बा. ब्र. पूज्य श्री चंपालाल जी म. सा. तथा श्रुतधर पं. र. श्री प्रकाशमुनि जी म. सा. की असीम कृपा से इस युग में भक्तों के भगवान् समान, जिनका जीवन मंत्र "मरना मंजूर है दोष लगाना मंजूर नहीं" है जैसे तीर्थंकरों की उपस्थिति में गणधर आदि संत-सतियाँ दोष रहित निर्मल संयम पालते हैं वैसे ही चौथे आरे के नमूना रूप पूज्य महात्मा जी म. सा. तथा बा. ब्र. पूज्य श्री भद्रिकमुनि जी पूज्य श्री नवीनमुनि जी म. सा. ठाणा ३ का एवं ज्ञानगच्छ की महासती श्री गुणबाला जी श्री हर्षिदा जी श्री विरक्ति जी श्री सुनंदा जी म. सा. ठाणा ४ का चातुर्मास हमारे क्षेत्र के पुण्योदय से प्राप्त हुआ। साथ ही पूज्य महात्मा जी म. सा. की नेश्राय में ज्ञान ध्यान और संयम में दृढ़ होने के लिए गोंडल संप्रदाय के पूज्य श्री राजेशमुनि जी म. सा. पूज्य श्री भावेशमुनि जी म. सा. श्री भव्यमुनिजी म. सा. ठाणा ३ का चातुर्मास भी प्राप्त हुआ।

चतुर्विध संघ की नेश्राय में चातुर्मास दरम्यान सभी ने धर्माराधना का लाभ लिया। चातुर्मास में चारों महीने दया का आयोजन श्री चंपकभाई मेहता परिवार तथा उनकी बहन श्री भानु बहन मेहता के परिवार की ओर से संयुक्त रूप से किया गया। साधर्मिक भक्ति का लाभ भी उन्होंने ही लिया। चारों ही मास कुल ३६९८ दया रिकार्ड के अनुसार तथा बिना नोंध की हुई कुल मिलाकर दया लगभग ४००० हुई। प्रतिदिन लगभग ३२ से

३५ तक दया होती थी। दिवाली के दिन भी १०८ दया का आयोजन हुआ।

चातुर्मास में पर्युषण के दौरान बिना किसी लालच, प्रलोभन के ३८ मोटी तपश्चर्याएं इस प्रकार हुई - ३३ उपवास १, तीस १, सोलह ४, ग्यारह २, नौ ४, अठाई २२ तथा ६ उपवास ४ दया की ग्यारहरंगी तथा धर्मचक्र के अलावा छोटी बड़ी तपस्याएं चालू ही थी। रात्रि संवर भी रोज अच्छी संख्या में होते थे।

दैनिक कार्यक्रम में प्रतिदिन ८.३० से ९ बजे तक बड़ी साधु वंदना की प्रार्थना, ९ से १०.३० बजे तक पूज्य महात्मा जी म. सा. उत्तराध्ययन सूत्र पर व्याख्यान फरमाते थे। ११ बजे से ११.४५ बजे तक पूज्य महात्मा जी म. सा. उत्तराध्ययन सूत्र की वाचणी फरमाते थे। दोपहर २.३० से ३.१५ तक पूज्य राजेशमुनि जी म. सा. स्थानांग सूत्र की वाचणी फरमाते थे। ३.१५ बजे से ४.०० बजे तक पूज्य महात्मा जी म. सा. आचारांग सूत्र तथा सूयगडांग सूत्र और दशवैकालिक सूत्र की वाचणी फरमाते थे। रात्रि ९ से ९.३० बजे तक पूज्य महात्मा जी म. सा. भाइयों को सूयगडांग सूत्र के भाव समझाते।

इस प्रकार श्री उत्तराध्ययन सूत्र, आचारांग सूत्र, सूयगडांग सूत्र, दशवैकालिक सूत्र के भाव शुद्ध संयम पालने वाले पूज्य महात्मा जी म. सा. जैसे संत के मुख से सुन कर संत-सतियाँ श्रावक-श्राविकाओं ने पूरा लाभ प्राप्त किया। पूज्या महासतियों में पूज्य बा. ब्र. श्री गुणबाला जी म. सा. आदि ठाणा गोंडल संप्रदाय के पूज्य बा. ब्र. श्री कृष्णाबाई म. सा. आदि तथा हालारी संप्रदाय के पूज्या बा. ब्र. कमलाबाई म. सा. आदि

ठाणाओं ने लाभ लिया। श्रावक भाइयों तथा श्राविका बहनों ने भी भावपूर्वक अच्छी संख्या में लाभ लिया और अपनी अपनी धारणा शक्तिनुसार ग्रहण किया और क्षयोपशम प्रमाण जीवन में उतारने का संकल्प लिया।

आज के युग में धार्मिक पाठशालाएं लगभग मृत प्रायः हो गई है। सामायिक, प्रतिक्रमण, छकाय के बोल, नव-तत्त्व तक का ज्ञान प्रत्येक श्रावक श्राविका भाई बहनों को होना चाहिये। ज्ञान हो तभी व्यक्ति तीर्थ में स्थान प्राप्त करने के योग्य गिना जाता है। ऐसी हमारी धारणा है। अतः चातुर्मास में दस दिन का आवश्यक आराधना शिविर का आयोजन करने में आया। जिसका पूजा संस्कार केन्द्र के संचालक श्री कांतिभाई शाह तथा श्री जयंतीभाई बेलाणी ने संतोषप्रद संचालन किया। जिसका समय प्रातः १० से ५ बजे तक था। शिविर में पाठ लेने, कंठस्थ करके सुनाने आदि की व्यवस्था थी। लगातार पाठ याद करने में कठिनाई होती है अतः पूज्या महासती जी म. सा. जैन सिद्धान्त के अनुसार बोध कथा और धर्मकथा सुनाते। साथ ही पूज्य महात्मा जी म. सा. भी कथा वार्ता समझाते। शिविर में ५५ बालक बालिकाओं ने लाभ लिया। परिणाम स्वरूप सामायिक कंठस्थ करने वाले ९ बालकों, अर्थ सहित कंठस्थ करने वाले ११ तथा प्रतिक्रमण कंठस्थ करने वाले ३ और सार्थ प्रतिक्रमण सूत्र कंठस्थ करने वाले ५ थे। इस तरह २८ बालक बालिकाएं थे इसके अलावा अन्य बालकों ने अपने क्षयोपशम के अनुसार पाठ कंठस्थ करके आवश्यक आराधना में भाग लिया।

पूजा संस्कार केन्द्र में वर्षो से सामायिक शुद्ध उच्चारण

सहित अर्थ युक्त सीखने वाले को रूप ७५) तथा प्रतिक्रमण कंठस्थ करने वाले को १००) दिये जाते हैं। इसके अलावा शिविर में भाग लेने वालों को उपरोक्त रकम तथा रोकड़ रकम अलग-अलग दाताओं की तरफ से चांदी के सिक्के बॉलपेन नोट आदि पुरस्कार प्रदान किये गये।

पूज्य महात्मा जी म. सा. के मुख से आगमवाणी का पाठ समझ कर तथा पूज्य गुणबाला जी म. सा. की प्रेरणा से परिपक्व उम्र के कई भाई बहन सामायिक प्रतिक्रमण छह काय बोल थोकड़े बड़ी साधु वन्दना पुच्छिसुणं आदि कंठस्थ कर भाग्यशाली बने।

इन संत-सतियों के चातुर्मास से श्री संघ धन्य धन्य हो गया। कोई प्रभावना नहीं, तप-जप के अनुमोदना कार्यक्रम नहीं, कोई फंड फाला नहीं, यह इस संघ की विशिष्टता रही।

ज्ञानगच्छ की साध्वी रत्ना पूज्य बा. ब्र. श्री निर्मलकुंवर जी म. सा. की सुशिष्याएँ बा. ब्र. पूज्य गुणबाला जी म. सा. आदि ठाणा ४ पूज्या महात्मा जी म. सा. के चातुर्मास में ज्ञान ध्यान आदि का लाभ लेने हेतु पधारी थी। चातुर्मास में उनके छोटी बड़ी कई तपस्याएँ चलती रहती थी। पूज्या विरक्ति महासती जी की लम्बी तपस्या चल रही थी किन्तु आज कितने उपवास हैं यह नहीं बताते थे। श्रावकों को जानने की उत्कंठा रहती थी किन्तु पूज्या महासती जी बताते नहीं थे। योगानुयोग बाहर गांव से मेहमान आये हुए थे वे मांगलिक श्रवण के लिए जब पूज्या महात्मा जी म. सा. के पास गये तब पूज्य महात्मा जी म. सा. पूज्या विरक्ति जी महासती जी को २९ उपवास के पच्चक्खाण करा रहे थे। वे मेहमान

चंपकभाई के यहाँ भोजन करने को गये वहाँ स्वाभाविक रूप से पूज्या महासती जी के २९ उपवास की बात हुई। दूसरे दिन चंपक भाई ने व्याख्यान में महासती जी के ३० वें उपवास की घोषणा की। अगले दिन पूज्या महासती जी पारणा करेंगे ऐसी सबकी धारणा थी। किन्तु पूज्या महासती जी श्री विरक्ति जी ने पारणा नहीं करते हुए एक उपवास बढ़ा दिया। इस प्रकार करने का कारण जानने के लिए श्री चंपकभाई ने पूज्य गुणबाला जी म. सा. के साथ में चर्चा करते हुए पूछा कि - 'क्या श्रावक-श्राविकाएँ भावावेश में ऐसी तपस्या के पारणे की तैयारी कर ले और आप को दोष लगे, उससे बचने के लिए एक उपवास के पच्चक्खाण बढ़ा लिये ?' पूज्या गुणबाला जी म. सा. ने इस बात के साथ सहमत होते हुए बताया कि- "पारणे की गोचरी के लिए जाये और हमारे निमित्त से तैयार किया हुआ आहार पानी अनजान से भी हमारे पात्र में न आ जाय, दूषित आहार पानी काम में लेते हुए पारणा न हो - इस कारण से एक उपवास की तपस्या आगे बढ़ा दी और बत्तीस उपवास का पारणा किया।"

जिस संप्रदाय में गोचरी (एषणा समिति) में इतनी अधिक सतर्कता रखने में आवे, एक भी दोष न लगे इसकी सतत जागृति रखी जाती हो ऐसी संप्रदाय की महासतियों का चातुर्मास प्राप्त कर हमारा संघ अपने आप को धन्य महसूस करने लगा।

ऐसे पूज्य संत सतियों के दर्शन कर जीवन धन्य बन जाय और महान् कर्मों की निर्जरा का लाभ हो, इसमें कोई शंका नहीं है।

पूज्य महात्मा जी म. सा. का
अन्तिम व्याख्यान

(दिनांक १६-९-१९९८)

अनंत उपकारी भगवान् महावीर स्वामीने कोटि कोटि वंदन!

प्रसन्नता मां रहेवुं ते मारो स्वभाव छे। हवे एवा कार्यो नथी करवा के भविष्यमां दुःख आवे। मारे दुःख भोगववुं नथी। दुःख अे मारो स्वभाव नथी। पांच इन्द्रिय ना विषय मां मनने जवा न देवुं, प्रिय-अप्रिय न करवुं ते पूर्ण समाधि ने प्राप्त करे छे...।

मोक्ष मां जवुं छे। तमे गया अमे बाकी रही गया अमारे पण मोक्ष मां जवुं छे। पापने छोडवा छे। आयुष्य नो भरोसो नथी। धर्म करो...धर्म करो....धर्म करो......

जीवता छो ?

जीवनने सफल बनाववुं होय तो धर्म करो। तीर्थंकर भगवाने कहेलुं शक्ति होय तो दीक्षा लो। बने तेटला पापो छोडो। थोडा दिना नी जींदगी, शुं लेवानुं ?

केटला दिवसना सुख...!

थोडा कालनुं पाणीनुं बिन्दु केटली वार रहेशे? १०० वर्ष ३६५०० दिवस...... वाह! संसारमाथी कांई नथी लेवानुं? ज्ञान-दर्शन प्राप्त कर। कांई तारूं नथी। घर-बार, हाट-हवेली कांइ तारूँ नथी।

तुं आत्मा छे।

तुं ध्यान धर। तारा आत्मा ने बचाव।

मारा मारा करी खोटा मोहमां धर्म ने छोडशो नहीं। शुं लेवानुं आ संसारमां? मरे इ शुं लइ जाय छे? शुं सुख भोगवी लीधुं? करवानुं करे नहीं, मरी जाय। धन, शरीर, परिवारनी पाछल, संसारना सुखनी पाछल, मलेलो अवसर गुमावी दे छे।

ज्ञानी, अेक क्षणने माटे पाप बांधे नहीं। मूर्ख, धन-दुकान-कुटुंब-कबीला पाछल पाप बांधे। बोध लागतो नथी, मारा दिकरा-दिकरी मारुं बधु-मारुं बधुं, पारकु लागतु नथी। मारुं-मारुं, आ काम करवुं अगत्यनुं छे। आ काम मारा माने, मोह उतरतो नथी। करवानुं ते नथी करतो।

तीर्थंकर केवली अे शुं कयुं? तेनी खबर नथी पडती। मारी बुद्धि, मने खबर पडे केम जीववुं, लखपति बनाय......थोडा दिन रही ज्यां जवानुं छे, तेनी तैयारी करतो नथी। संसार ना सुखमां बुद्धि लागे, ते बुद्धिनी किंमत नथी। शुं लेवानुं?

धर्म करवान्नो अवसर खोटा कामोमां लगावे। संसारना काम इम्पोर्टेन्ट लागे। ज्ञानीने चक्रवर्ती नी रिद्धि तुच्छ लागे। आ बधु खोटु, साचो धर्म, साचो संयम, साचो मोक्ष नो मार्ग, बाकी कांई नहीं।

संसार दावानल दाहनीरं, सम्मोह धूली हरणे समीरं।
माया रसा दारण सार सीरं, नमामि वीरं गिरिसार धीरम्॥

हे भगवन! महावीर स्वामी! तमने भाव पूर्वक वंदन। उपकार कर्यो, साचो मार्ग बतलाव्यो। केम जीव दुःखी थाय ते बताव्युं। संसार दावानल, वांधा वचका, आरंभ-समारंभ, विषय कषाय थाय। संसार दावानल छे। बीचारा जीव जली रह्या छे।

भाग्यशाली आत्माने सम्यग्-दर्शन थाय। अंतरदृष्टि खूले, साचु समजाय, साचुं शुं खोटु शुं, साचो भगवाननो मार्ग, आवी श्रद्धा थाय। संसारमां शुं? मारे जवानुं, तेनी तैयारी करवानी। संसार दावानल, दुःखथी भरेलो, कांई वखत कांई ने कोई वखत कांइ। दर्दने मिटाववा.......तमारुं नाम लइअे शांति शांति। मोह ममता, कषाय आसक्ति विषय भोग छोड़ो। आवो पवित्र उपदेश देवावाला भगवानने प्रणाम......

हे गुरुदेव! आपने पण कोटि कोटि प्रणाम। दीक्षा आपी महा सुखी बनाव्यो। दीक्षा अनुपम सुखनी खाण। साचु, पवित्र, निर्मल जीवन, जे तीर्थकरने मल्यु ते अमोने मल्युं। केटला भाग्यशाली! संयम लइ शके ते भाग्यशाली, बाकी संयम लइ शकता नथी, संयममां आनंदनो अनुभव थाय, ते छे खंडनी रिद्धिमां न थाय।

हे भगवान!........ संसारमां पाप करी करी ने लूला-आंधला-ठुंठा-कोढ वगैरे रोग आवे। बिचारा जीवो.....नशीब पर छोडे छे। खबर नथी दुःख क्यां थी आव्युं। नशीब शुं? पापना फल प्राप्त करे। पाप करे तेने दुःख आवे। पाप न करे तेने दुःख आवतुं नथी। तीर्थकर नी वाणी आ छे, सुखी थवुं होय तो पाप छोडी धर्म कर। केवलज्ञानी वीतरागी बनी जइश।

संसार बलती आग। संयम शीतल छांय। मारा मारा करी मरी जवुं, संसारमां उंधी मान्यता तमे मारा पर प्रेमलागणी नथी राखता मोढुं चढावो छो आम करो-तेम करो हाय-बिचारा भोला जीवो आ संसार पागलखाना पागल नी वातो पागल बनावे, आवा संसार थी छोडाव्यो, संयम देवडाव्यो हे गुरुदेव! आपने कोटि कोटि प्रणाम!

द्वितीय व्याख्यान का शेष भाग
पृष्ठ नं...

पूज्य महात्मा जी म. सा. की अंतिम वांचना

(सूयगडांग सूत्र अध्ययन ३ उद्देशक ३)

(पूज्य महात्मा जी म. सा. ने अंतिम वांचना दिनांक १६-९-९८ के दिन दोपहर को २.३० से ४.०० बजे तक दी थी। दूसरे दिन दिनांक १७-९-९८ को दोपहर आप कालधर्म को प्राप्त हो गये। कालधर्म के २४ घण्टे पहले जो वांचना दी थी वो यहाँ प्रस्तुत हैं - उनके हृदय के पूर्णतया भाव हम समझ सकें, इस हेतु से इसे गुजराती भाषा में (हिन्दी लिपि में) ही रखा है।)

जैन धर्म थी विपरीत वचन सांभली जे पण पीछे हठ न करवी। कायर बनवुं नही। कायरता थी मोक्ष मलवानो नथी। वीरने ज मोक्ष मले छे। **पिट्ठओ**-पाछल, **भीरु**-डरपोक-बीकण-कायर-पेंतरा विचारे, जिनशासन मां डरपोक आवी जाय जे मरवाथी डरे। साधु ना २७ गुणोमां अेक गुणमां मरवाथी न डरवुं। पण बीकण, डरपोक साधु दोष लगाववाथी नथी डरतो पण मरण थी डरे छे। दीक्षा लीधा पहेला ते डरे। हुं दीक्षा पाली शकीश के नहीं? आवा विचारो आवे, त्यारे तो पहेला प्लान बनावी राखे-जो आ मारी पासे पैसा छे ते हुं कोई विश्वासु ने आपुं। जो कदाच दीक्षा पलाय नहीं तो पछी घरे आवी शकाय, ते माटे पहेला व्यवस्था करी ल्ये। **वलयं**-अबलं लडवा जाय छे पण लडवानी भावना नथी। संयम ले

छे पण मरवानी के संयमनां कष्टो सहवानी भावना नथी। **वितिगिच्छा**=कर्मना फल मां संदेह छे। संयम पालननुं फल नथी जाणतो। **पंथाणं अकोविया**-खाली दीक्षा लीधी छे पण संयम शुं छे? तेनुं फल शुं छे? ते नथी जाणतो। मोक्षमार्गनो अजाण। मोक्षमार्ग ने जाणवावालानुं खून तो थनगनतुं होय, शुद्ध संयम पालीशुं, पण कायर शुं जाणे? **णाया**-प्रख्यात छे। आ शूरवीर योद्धो छे। ज्यां जाय छे त्यां तेनी जीत ज थाय छे। शूरवीर योद्धो युद्ध संबन्धी कायर विचार नथी करतो। युद्धना नबला फलनी अे कल्पना पण नथी करतो।

सूरपुरंगमा-शूर छे ते आगल ज रहेवावालो होय छे, ते मरवाथी डरतो नथी, न तो पीठ देखाडता। ते जाणे छे के अहीं तो मरण थी अधिक थई थई ने शुं थवानुं छे? जे भगवानना आज्ञा पालन माटे जान आपवा कुरबान छे ते आराधक बनी जाय। **एवं** - उपरोक्त भाव थी-कषायकुशील भाव थी-मरी जइश पण अेक पण दोष लगाडीश नहीं, आवी ऊंची भावना थी दीक्षा लेवी जोइअे। मोह राजा भले कहे तुं दोष लगाव। **कटे तो कट जाना, दटे तो दट जाना, जले तो जल जाना,** कोई बड़ी बात नहीं है। निर्दोष संयम पालन थी रुडुं बीजु शुं छे? अमारो तो अेक ज प्रोग्राम "दीक्षा लेवी-निर्दोष संयम पालवो अने मोक्षमां जवुं।" शूरवीर योद्धानी जेम साधु मां जोम होइ, जीवीश त्यां सुधी लडीश, कां तो जीतीश नहींतर मरीश। आत्मानी साक्षीअे, अरिहन्त-सिद्धनी साक्षीअे जे संयम लीधो छे, ते पालीश, हारीश नहीं, शुद्ध संयम पालीश। मरवुं तो डावा हाथ नो खेल छे। भगवाननी आज्ञापालनमां मरीअे

तेथी विशेष शुं ? हे भगवन्! मने बल आपजो। तमारी आज्ञामां हुं जान देवा तैयार। मारी भावना तो अेक ज भगवान! तमारी आज्ञा पालनमां मरूँ। दीक्षा ल्यो तो मरवामां वहेला। खंधे खापण लइने निकलजो। "**अरिहंत मारा अन्तर मां ने संथारो मारी साथमां**" दोष लगाडीने य आखरे मरवुं तो पडे ज छे तो आराधक थई ने मरने! पण जीव बिचारा! नपुंसकीया थई जाय। हारी जाय। सहन न करी शके।

आरंभं तिरियं - आरंभनी साथे आड वेर करी लेवानुं छे। जेम कोईने कोईनी साथे बनतु न होय त्यारे कहेवाय के आनी साथे आड वेर छे। आनी साथे मारे नहीं फावे, तेम आरंभ थी आड वेर। **अत्तत्ताए** - आत्मानी रक्षा करतो थको आत्मा ने अेक पण दोष नां डाघ लागे नहीं। आत्मानां गुणोमां क्षति न आववी जोइअे। आत्मा ना गुणो लुंटावा न देवा जोइअे। शूरवीर योद्धानी भावना-हूँ जीवतो छुं त्यां सुधी मारा राज्यनी रक्षा करीश। अेम मुनि, मारा संयमी आत्मानी रक्षा करीश। जे निर्ममत्व भावथी विचरूं छुं, तेनी रक्षा करी-जेम योद्धानी दृष्टि पाछल नथी होती, मात्र शत्रु सामेज होय छे, तेम साधुनी दृष्टि संयम ने प्रति, आत्मानी रक्षा प्रति ज होवी जोइअे।

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन १८ गाथा ३५-४२

सगरो वि सागरंतं, भरहवासं णराहिवो ।
इस्सरियं केवलं हिच्चा, दयाइ परिणिव्वुडे ॥ ३५ ॥
चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।
पव्वज्जमब्भुवगओ, मघवं णाम महाजसो ॥ ३६ ॥

सणंकुमारो मणुस्सिंदो, चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।
पुत्तं रज्जे ठवेऊणं, सो वि राया तवं चरे ॥ ३७॥
चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।
संती संतिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरं ॥ ३८॥
इक्खागरायवसभो, कुंथू णाम णरीसरो ।
विक्खायकित्ती भगवं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥ ३९॥
सागरंतं चइत्ता णं, भरहं णरवरीसरो ।
अरो य अरयं पत्तो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥ ४०॥
चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।
चइत्ता उत्तमे भोए, महापउमे तवं चरे ॥ ४१॥
एगच्छत्तं पसाहित्ता, महिं माण णिसूदणो ।
हरिसेणो मणुस्सिंदो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥ ४२॥
अण्णिओ रायसहस्सेहिं, सुपरिच्चाई दमं चरे ।
जय णामो जिणक्खायं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥ ४३॥

भरत चक्री राजा! काल झपाटा देता है। तू करी लेजे थाय तेटलुं भरत!

आ राज, संसार ना काम बधा छोड़!, वखत आवी जशे खाली हाथे जइश। मोको छे लेवाय तेटलुं ले। भरत राजा चेती गया, साधुपणुं भावथी आवी गयुं। अन्तरमुहूर्त्त मां केवलज्ञान, दीक्षा लइ लीधी, केवलज्ञानी थई गया। आ मार्ग साचो।

हे संयति राजा! ते दीक्षा ते सारु कर्युं।

मोटा मोटा चक्रवर्ती राजा छ खंड छोडी दीक्षा ले छे। छ खंड करता संयम ऊँचो छे।

छ खंड, ६४ हजार रानियाँ, स्त्री रत्न कांइ न जोइअे। स्नान नहीं, वाहन नहीं।

पांच समिति तीन गुप्ति, पांच महाव्रत, पंच परमेष्ठी अरिहंत सिद्ध साधु-साध्वी श्रेष्ठ ऊँचा छे। हिंमत राखो। संसारना सुख छोडवां माटे धर्म करवानो छे।

भरतचक्रवर्ती नुं ५०० धनुषनुं देहमान अने ८४ लाख पूर्वनुं आयुष्य हतुं। सगर चक्रवर्ती नुं ७२ लाख पूर्व नुं आयुष्य हतु। ४५० धनुष नुं देहमान हतु। संयम लई मोक्षमां गया। अजितनाथ नामना तीर्थंकर ना वखतमां भारत वर्ष छोडी मोक्षमां गया।

मघव चक्रवर्ती, १५ तीर्थंकर थई गया अने १६ मां शांतिनाथ थवाना हता तेनी वचमा थया। त्यारपछी सनत चक्रवर्तीअे पुत्रने राजगादीअे बेसाडी ने दीक्षा लीधी। सनतचक्रवर्ती ने ७०० रोग थया। बधु छोडी ने मरी जवानुं। ल्हारे आवे नहीं। साथे आवे धर्म। सनतचक्रवर्ती अे अंतक्रिया करी छे। मोक्षमां गया छे।

शांतिनाथ तीर्थंकर ने वली चक्रवर्ती। तेना केटला पुण्य। १ लाख वर्षनुं आयु। आगला भवमां कबुतरनी दया पाली। मारा शरण मां कबुतर आव्युं। हवे मरवा देवाय नहीं। केवी दया! तेनाथी तीर्थंकर नाम कर्म बांध्युं। शांति देवावाला तीर्थंकर मोक्षमां गया। भरत क्षेत्र ने छोड़ी ने शांतिनाथ मोक्ष मां गया।

कुंथुनाथ छट्ठा चक्रवर्ती तेओनुं आयुष्य ९५ हजार वर्ष नुं हतुं। तेओ पण तीर्थंकर अने चक्रवर्ती। अरनाथ पण तीर्थंकर अने चक्रवर्ती। चार कर्म खपावी केवलज्ञान पछी मोक्ष प्राप्त कर्यो। आवा मोटा मोटा पुरुषोअे दीक्षा लीधी छे।

आठवा सुभूम चक्रवर्ती। मर्या त्यां सुधी संसार ना सुख छोड़्या नहीं। नरकमां गया। तेनी शुं वात?

नवमा महापद्म चक्रवर्ती। अेक छत्र छ खंडनुं राज करवा वाला।

हरिषेण नामना चक्रवर्ती दीक्षा लीधी मोक्ष मां गया।

जय नामना चक्रवर्ती मुणिसुव्रतना वखत मां संयम लइ श्रेष्ठ गति ने प्राप्त थया।

संसार ना सुख महा भयंकर। समकित ने प्राप्त करो। संसार ना सुख भोगववा जेवा नथी। संसारना सुख छोडुं ने संयम लऊं, तेवी भावना करवी, पापने छोडवा। बीजा राजा महाराजाओ थई गया। संसार ना पाप छोडया ने महासुख पाम्या।

जे भाग्यशाली आत्मा भगवाननी वाणी ने जीवनमां उतारशे, ते परम सुखी बनशे।

"हवे तो पुष्प गयुं परदेश ने अही फोरम रही गई,
जनारा तो जतां रह्या, पण अमर याद रही गई,
आध्यात्मिक जीवननां अलौकिक आदर्शो मुक्तां गयां
'महात्माजी' धूपसली बनीने जीव्या, सुवास फेलाई गई॥"

– सरदारमुनि, बरवाला संप्रदाय

पूज्य महात्मा जी म. सा. की अंतिम साधना

रणजीतनगर उपाश्रय जामनगर में चातुर्मासार्थ विराजित महात्मा पूज्य श्री जयंतीलाल जी म. सा. ने दि० १६-९-९८ को व्याख्यान के पूर्व और व्याख्यान के पश्चात् आगम वाचना फरमाई जो दोपहर १ बजे तक चली। गोचरी के पश्चात् दोपहर २-३० बजे से ४ बजे तक पुनः वाचना फरमाई फिर ४.०० बजे से ५-१५ बजे तक धोराजी व अन्य स्थानों से पधारे दर्शनार्थियों को धर्म ध्यान की प्रेरणा की यानी दोपहर १.०० बजे से २-३० बजे तक के समय को छोड़ कर आप दिन भर जिनवाणी का पान कराते रहे। जिन्होंने दिनांक १६-९-९८ को पूज्य महात्मा जी म. सा. के मुखारविन्द से वाचनी सुनी उनका फरमाना है कि इस चातुर्मास काल में ऐसी वाचनी पहले कभी नहीं सुनी। उस दिन वाचनी में अलग ही जादू था। पूज्य श्री जी का रोम रोम पुलकित हो रहा था। उनके अंतर हृदय से निकलने वाले हर शब्द में दृढ़ धर्म श्रद्धा प्रकट हो रही थी। वे बार-बार यही प्रेरणा दे रहे थे कि "**किं परं मरणं सिया** - मरने से ज्यादा क्या होने वाला है, मरना मंजूर पर दोष लगाना मंजूर नहीं।" आदि आदि।

उपरोक्त कथनी करणी में बदल गयी। सायं ५-४५ बजे छाती में दर्द उठा। असह्य वेदना पर आप ने चौविहार करते हुए शरीर की साता के लिए बाह्य उपचार तथा सेवा लेने के प्रत्याख्यान करके सागारी संथारा कर लिया। प्रतिक्रमण

के बाद अपनी शय्या पर सोते बैठते वेदना को समभाव से सहन करते रहे। पूज्य श्री राजेशमुनि जी म. सा. श्री भद्रिकमुनि जी म. सा. आदि पूरी रात्रि जागृत रहे और आपके सामने बैठे हुए सेवा की भावना प्रकट की तो पूज्य महात्मा जी म. सा. ने फरमाया – "मैं आनंद में हूँ, समाधि में हूँ, मेरे शरीर को स्पर्श मत करना और मुझे मेरी साधना करने देना।" दिनांक १७-९-९८ को प्रातःकाल श्रावक श्राविकाओं ने दर्शन किये। किसी को पूज्य महात्मा जी म. सा. की बीमारी का अहसास ही नहीं हुआ। किसे पता था कि जैन जगत् का यह उज्ज्वल नक्षत्र आज ही अस्त हो जाएगा ? व्याख्यान के बाद संघ प्रमुख श्री चंपकभाई ने पूज्य महात्मा जी म. सा. से बाह्य उपचार करने देने की विनति की तो पूज्य महात्मा जी म. सा. बोले-"तमारा जेवा श्रावक संयम मां ढीला पडवानी वात करे!! मारे तो आराधक थवुं छे, माटे आवी कोई ढीली वात न करशो।"

इस तरह पूर्ण सावचेती के साथ समभावों से पीडा को सहन करते लगभग २ बजे शय्या से उठे और किसी की सहायता के बिना कमरे से बाहर निकले और ८-१० कदम दूर जहाँ रोज स्वाध्याय करते थे वहाँ जाकर जमीन को पूंजा, आसन बिछाया और दीवार का सहारा ले कर कायोत्सर्ग ध्यान की मुद्रा में पद्मासन लगा कर बैठ गये और संतों को सूचना कर दी कि-मैंने यावज्जीवन चौविहार संथारा कर लिया है अतः किसी प्रकार का प्रयोग या उपचार करना नहीं। यह कह कर पूज्य श्री ध्यानस्थ हो गये। जामनगर के श्री

चंपक भाई का कहना था कि दोपहर २.०० बजे बाद पूज्य महात्मा जी म. सा. की आँखों से दिव्य प्रकाश वाली किरणें निकलती हो, ऐसा आभास हुआ। **कुछ ही समय बाद ध्यानस्थ बैठे बैठे कायोत्सर्ग मुद्रा में ही पूज्य महात्मा जी म. सा. की आत्मा ने इस नश्वर देह का त्याग कर दिया। इस प्रकार जीवन की अंतिम श्वांस तक संयम में किसी प्रकार का दोष नहीं लगे, ऐसी पूरी-पूरी सावधानी रखते हुए समाधि भावों में अपने तीसरे मनोरथ को पूर्ण किया और मृत्यु को महोत्सव बना दिया।**

पूज्य महात्मा जी म. सा. जैसा कहते थे वैसा ही उन्होंने अपने आचरण में करके दिखाया। जीवन के अंतिम इन दो दिनों में संयम भावों में उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए उन्होंने अपने तीसरे मनोरथ को जिस तरह पूर्ण किया वह चतुर्विध संघ के लिए स्मरणीय और आदरणीय है। उनके आदर्श संयमी जीवन से ऐसा लगता है कि वे निश्चय ही एक भवावतारी बन कर शीघ्र मोक्ष सुखों को प्राप्त करेंगे। इसी शुभ भावना के साथ हमारी विनम्र हार्दिक श्रद्धांजलि !

अंतिम क्रिया - श्री वर्धमान स्था. जैन संघ के प्रमुख श्री की विनति से घडियाली परिवार ने अपने कारीगरों से मांडवी (बैकुण्ठी) बनाई जिसका लाभ चंपकभाई महेता परिवार तथा उनकी बहन भानुबहन महेता परिवार ने लिया। वैकुण्ठी बनाने से लगा कर श्मशान घाट पहुँचाने तक सारी व्यवस्था स्था० जैन युवक मण्डल (सेवा) ने संभाली, एतदर्थ धन्यवाद!

मांडवी (बैकुण्ठी) में किसी प्रकार की मेटल (धातु) का उपयोग नहीं किया गया ताकि अग्निदाह में किसी प्रकार के अवशेष शेष न रहे। अंतिम यात्रा में लगभग १५ हजार लोगों की उपस्थिति थी। मारवाड़, गुजरात, सौराष्ट्र, बम्बई आदि के हजारों श्रावक-श्राविकाएँ अंतिम दर्शनार्थ यहाँ पहुँचे। अंतिम यात्रा में बैण्ड नहीं, गुलाल नहीं, वीडियो नहीं, फोटो नहीं और साथ ही किसी प्रकार का आडम्बर नहीं.......। पूरी सावधानी रखते हुए इस आदर्श संत ने जिस प्रकार दीक्षा ग्रहण की उसके अनुरूप ही अंतिम क्रिया भी संपन्न की गयी।

'जयंतीमुनि' जय जय जय जयकार

✍: मांगीलाल शिशोदिया, औड़ा

जय जय जय जयकार 'जयंतीमुनि' जय जय जय जयकार ॥ टेर ॥

शांतिनाथ की प्रार्थना सुनाते, भवि जीवों को शांति कराते,
देवे शांति अपार, जयन्ती मुनि ॥ १ ॥

'चम्पक' गुरु के प्रथम शिष्य थे, लियो संयम 'धार' मंझार,
महिमा अपरम्पार, जयंतीमुनि ॥ २ ॥

वैराग्यभाव का आख्यान सुनाते, भवि जीवों को सुखी बनाते,
करते सम व्यवहार जयंतीमुनि ॥ ३ ॥

'जयंतीमुनि' से प्रश्न किया था, ज्ञानगच्छ को कैसे जाना था।
बादाम का हलवा जान, जयंतीमुनि ॥ ४ ॥

गत चातुर्मास जालौर हुआ था, सकल संघ धन्य हुआ था,
सांकलचन्द लियो लाभ अपार, जयंतीमुनि ॥ ५ ॥

यह वर्षावास जामनगर था, विख्यात गुजरात प्रान्त,
किया संथारा सार जयंतीमुनि ॥ ६ ॥

चिंतन के द्वार से

(पूज्य महात्मा जी म. सा. का संसार अवस्था का चिंतन)

☆ हे जीव! इस क्लेश रूपी संसार का अन्त कर, प्रमाद का त्याग कर और जागृत बन अन्यथा रत्न चिंतामणी रूप यह दुर्लभ मानव भव निष्फल चला जायगा।

☆ किसी की हंसी करना नहीं, क्योंकि हंसी करने के भयंकर परिणाम आते हैं।

☆ गलत ढंग से अर्थ करने वाले के लिए शास्त्र भी शस्त्र हो जाता है।

☆ जहाँ स्नेह है वहाँ बहुत दुःख है। जब तक स्नेह बंधन से नहीं बंधे तब तक ही सुख है।

☆ हे मुनियो! मोह राजा के साथ अभी ही वैर करके निकले हो इसलिए अब बराबर सावधान रहना।

☆ जब तक तुमने राग रूपी केसरी और द्वेष रूपी गजेन्द्र को वश में किया नहीं तब तक तुम इस संसार रूपी अटवी से पार पाने में समर्थ नहीं हो सकोगे।

☆ जैसे मृतक शरीर का शृंगार और अरण्य में रुदन करना व्यर्थ है उसी प्रकार जिनेश्वर भगवान् द्वारा प्ररूपित धर्म की आराधना किये बिना सब कुछ निरर्थक है।

☆ एक पुरुष प्रतिदिन लाख सौनैया का दान करता है और एक पुरुष शुद्ध भाव से विधि सहित सामायिक

करता है तो इन दोनों में सामायिक करने वाला अधिक लाभ को प्राप्त करता है क्योंकि आस्रव को रोकने वाले संवर का महान् लाभ तो सामायिक करने वाले को ही होता है।

☆ सम्यक्त्व सहित चारित्र ही जीव को मुक्ति दिलाने वाला है।

☆ सेठ, साहूकार, इन्द्र और नरेन्द्र बनना सरल है परन्तु एक सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ है।

☆ यह निश्चय है कि भाग्यहीन प्राप्त अवसर का लाभ नहीं ले सकता। वर्तमान में जिनशासन और सर्वज्ञ (सत्य) कथित आगम उपलब्ध होने पर भी उनसे आत्म-कल्याण करने वाले भाग्यशाली कितने?

☆ जैसे स्वच्छता के इच्छुक व्यक्ति कचरे से रहित स्थान को पसंद करते हैं वैसे ही समाधि के इच्छुक पुरुष स्त्री रहित स्थान को पसंद करते हैं।

☆ वन में अनेक पक्षियों की एक साथ होने वाली आवाज में जैसे कोयल अपने बच्चे की मधुर आवाज का अनुमान लगा लेती है उसी प्रकार गुरु भी अपने शिष्य के नीति युक्त आगम सम्मत मधुर वचन सुन कर उनकी उत्तमता का अनुमान कर लेते हैं।

☆ इस पंचम काल में भी वास्तव में वे भाग्यशाली मनुष्य धन्यवाद के पात्र हैं जो साक्षात् तीर्थंकर, केवली भगवंत अवधिज्ञानी और मनःपर्यव ज्ञानियों के वियोग में भी मात्र आगम के वचनों का ही आधार ले कर मोह राजा के सामने वहादुरी से लड़ते हैं।

☆ सत्य है - सज्जन पुरुषों को भी आपत्तियाँ आती है किन्तु वे अनुचित आचरण नहीं करते।

☆ हे भव्य जीव! जब तक तेरे शरीर में भयंकर राजरोग उत्पन्न नहीं हुए, जरा अवस्था निकट नहीं आई और इन्द्रियाँ शिथिल नहीं हुई हो तब तक इस देह से संयम तप और धर्म का आचरण कर ले।

☆ काल रूपी अग्नि प्रज्वलित होने के बाद तेरे द्वारा किया गया उद्यम हास्यास्पद होगा।

☆ हे वीतरागी नाथ! मैं आप से देवेन्द्र या चक्रवर्ती की पदवी नहीं चाहता किन्तु मेरे आत्म गुण को प्रकट करने वाले निर्मल सम्यक्त्व रत्न की ही चाह करता हूँ।

☆ अहा! केवली भगवंतों की कैसी निर्विकारी, शांत, गंभीर और सर्व दुःखों का अन्त करने वाली वाणी! मैंने सम्पूर्ण दुनिया के देवों को देख लिया किन्तु तेरे जैसी अनुपम वाणी कहीं भी सुनने को नहीं मिली।

☆ अहंकार रहित (निर्दंभ रूप से) धर्म करने वाले के लिए तीन लोक में कोई भी वस्तु असाध्य नहीं है।

☆ अरे! ऐसे सुखों की चाह क्या करना, जिनके सेवन के पीछे दुःखों का पहाड़ टूट पड़ता हो? प्राणियों के प्राणों का विनाश कर के जिन सुखों को प्राप्त किया जाता है वे भविष्य में दुःखों का अम्बार खड़ा करते हैं।

☆ सम्यग्दृष्टि आत्माओं का धर्म क्रियाओं में जितना रस होता है उतना रस पाप क्रियाओं में नहीं होता।

☆ समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ता नहीं, सज्जन अपनी सज्जनता छोड़ता नहीं और दृढ़धर्मी अपनी श्रद्धा छोड़ता नहीं।

☆ क्रोध कषाय को दूर कर क्षमा गुण को अपनाओ।

☆ विनय धर्म का मूल है और व्यसन पाप का मूल है।

☆ मोटा ने आदर करे, छोटा ने कहे दूर।
वे साधु मत जाणजो, रोटी तणां मजूर॥

☆ कस्तुरी, रंग और रूप से हीन होते हुए भी बहुत कीमती होती है जबकि टेसू के फूल का रूप बहुत सुन्दर होता है किन्तु उसकी कीमत नहींवत् होती है अतः गुणों की ही प्रधानता है।

☆ मुंहपत्ति तो रखे किन्तु यतना के भाव नहीं हो तो व्यर्थ है (यानी हाथ में मुंहपत्ति रखने से यतना बराबर नहीं रहती)।

☆ निंदा से नहीं किन्तु निंदा हो, ऐसे कार्यों से डरो।

☆ साक्षात् सद्गुरु का योग होने पर भी भाग्यहीन व्यक्ति उनसे धर्म का लाभ नहीं ले सकता।

☆ धर्म सभा में पूज्य गुरुदेव, संत-सतियों के पास जाते हुए श्रावक के धारण करने योग्य पांच अभिगम -

सचित्त त्याग अचित्त विवेक उत्तरासंग कर जोड़।
कर एकाग्रचित को सब झंझट को छोड़॥

☆ कितनेक लोग ऐसा कहते हैं कि पशु खूंटे से बंधते हैं वैसे अपने को किसी भी सिद्धान्त या संप्रदाय से बंधना नहीं। ऐसा कहना और सोचना ठीक नहीं। वही गाय अच्छी और कीमती गिनी जाती है जो खूंटे से बंधी रहती है इससे विपरीत बिगडेल पशु की क्या कीमत? जो सर्वज्ञ कथित सिद्धान्तों (आगमों) के प्रति वफादार

रहते हैं, उनसे अपने आप को सहर्ष आबद्ध मानते हैं वास्तव में तो उनकी ही कीमत है। अपने मनमाने ढंग से बिना पैंदे के घड़े अनुसार जो बोलते हैं और वर्तन करते हैं उनकी क्या कीमत? अर्थात् कुछ भी नहीं।

☆ जो मोक्षार्थी होते हैं वे तो जिसके अध्ययन, चिंतन और मनन करने से मोक्ष अर्थ की सिद्धि होती है वैसी ही अनुप्रेक्षा करते हैं और आगमों में ही अपने मनोयोग को जोड़ देते हैं।

☆ मस्तक मुंडे बिना केवलज्ञान प्राप्त करने वालों के अनेक उदाहरण हैं किन्तु पांच इन्द्रियों और चार कषायों इन नौ के मुंडन बिना केवल ज्ञान ही प्राप्ति करने वाला का एक भी उदाहरण नहीं है अर्थात् नौ मुंडन के बिना केवलज्ञान नहीं हो सकता।

☆ जो जीव इन्द्रिय विषयों - कामभोगों को दुःखदायी नहीं मानते, वे जघन्य कोटि के हैं।

☆ जो जीव इन्द्रिय विषयों-कामभोगों को दुःखदायी तो मानते हैं किन्तु उन्हें छोड़ नहीं सकते वे मध्यम कोटि के हैं।

☆ जो जीव इन्द्रिय विषयों-कामभोगों को दुःखदायी मानते हैं और उन्हें छोड़ देते हैं वे उत्तम कोटि के हैं।

☆ जौहरी थईने मत करो, बकाली संग तकरार।
रतन विखरशे ताहरा, भाजी साथे गमार॥
भाग्यहीन को नहीं मिले, भली वस्तु का जोग।
जब दाखा पाकन लगे काक कंठ हो रोग॥

मुनि!

वेश तो साधु का पर शौक जिन के अपरंपार है।
त्याग की है बातें करते, भोग साधन से अति प्यार है।
आधुनिकता में फंसे या कीर्ति कंचन कामिनी में।
हाथ जोडे भक्त कहते ये हमारे तारणहार हैं॥

☆ सभी धर्म समान नहीं है।

☆ सभी दर्शनों में जैन दर्शन सर्वोत्कृष्ट है।

☆ त्रस या स्थावर किसी भी जीव की हिंसा हो ऐसी धार्मिक क्रिया या अनुष्ठान की प्ररूपणा तीर्थकर भगवान् नहीं करते, ऐसी श्रद्धा प्ररूपणा करने वाला एक मात्र अहिंसा प्रधान शुद्ध जैन धर्म ही श्रेष्ठ है।

☆ अहिंसामय सर्वोत्कृष्ट जैन दर्शन की यथार्थ श्रद्धा किये बिना कोई भी जीव सम्यग्-दर्शन प्राप्त नहीं कर सकता।

☆ हे आयुष्मन्! अहिंसा और मोक्ष का सच्चा मार्ग बताने वाला निर्ग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ है, यही परम अर्थ है। इसके अलावा मार्ग की प्ररूपणा करने वाले दर्शन अनर्थ रूप हैं।

☆ कुदेव, कुगुरु और कुधर्म की श्रद्धा मिथ्यात्व है।

☆ सुदेव, सुगुरु और सुधर्म की श्रद्धा सम्यक्त्व है।

☆ छह काय जीवों की संपूर्ण रूप से दया पालने की भावना वाले साधु साध्वी ही सुगुरु बन सकते हैं अन्य नहीं।

☆ आगम और सूत्र-सिद्धान्त के प्रति सम्यक् श्रद्धा रखने वाला ही सम्यग्दृष्टि बन सकता है, अन्य नहीं।

☆ सूत्र-सिद्धान्त के अनुसार श्रद्धा पूर्वक उपदेश देने वाले साधु-साध्वी ही सुगुरु बन सकते हैं, उत्सूत्र प्ररूपणा करने वाले नहीं।

☆ स्व समय अर्थात् जैन दर्शन को यथार्थ रूप से जाने बिना जो परमत अर्थात् अन्य धर्म का परिचय करता है उसे परपाखंडसंथवो नामक सम्यक्त्व का पांचवां अतिचार यानी दोष लगता है। इस दोष वाला प्रायः शुद्ध जैन धर्म की यथार्थ श्रद्धा से वंचित रहता है।

☆ जो जैन धर्म को भी सच्चा मानते हैं और अन्य धर्मों को भी सच्चा मानते हैं वे सभी अनाभिग्रहिक मिथ्यात्वी हैं। ऐसे जीवों में सत्य धर्म और असत्य धर्म की परीक्षा करने की शक्ति नहीं होती है।

☆ जो भाग्यशाली जीव अहिंसामय दया प्रधान शुद्ध जैन धर्म की यथार्थ श्रद्धा करके तदनुसार आचरण करेंगे वे अवश्य थोड़े भवों में ही मोक्ष के शाश्वत सुखों को प्राप्त कर निजानंद की मस्ती पायेंगे।

☆ सच्चे हैं वीतराग, सच्ची है वाणी।
आधार है आज्ञा, बाकी धूलधाणी॥

☆ स्यादवाद विण सत्य न सांपडे,
मनावे ज्ञानी आडेधड आथडे।
नय निक्षेप न जाण्या बापडे,
चडे मान-सम्मान ने राफडे।

☆ जहाँ धर्म घातक वचनों का प्रयोग होता हो, चारित्र नाशक उपदेश दिया जाता हो, आगम सिद्धान्तों का

लोप होता हो वहाँ विवेकी विद्वान् पुरुषों का मौन रहना शोभास्पद नहीं है।

☆ आगम के वचनों पर श्रद्धा कर तदनुसार आचरण करने की भावना वाला ही सम्यग्दृष्टि हो सकता है।

☆ यदि यशकीर्ति नाम कर्म का उदय हो तो वाक् पटुता से ख्याति, पूजा और कीर्ति तो प्राप्त हो सकती है किन्तु आत्म-कल्याण नहीं हो सकता।

☆ जिसने हंस को नहीं देखा है वह कदाचित् श्वेत वर्ण के कारण बगुले को हंस मान सकता किन्तु कौएं को तो नहीं, पर इस हुंडा अवसर्पिणी काल की यह बलिहारी है कि समाज में समझदार और विवेकी माने जाने वाले बड़े व्यक्ति भी कौएं को हंस मान लेते हैं।

☆ यदि हम सुखी होना चाहते हैं तो जगत् के सभी प्राणियों के प्रति मैत्री-वात्सल्य भाव रखें।

☆ वास्तव में वही विद्वता सार्थक है जो आगम का अनुसरण करती है।

☆ सोनगढ़ पंथ वाले उपादान की योग्यता से ही कार्य सिद्धि बताते हैं, वे कहते हैं कि निमित्त कुछ भी नहीं करता, यह मान्यता शास्त्र विरुद्ध, हेतु विरुद्ध और प्रत्यक्ष बाधित है।

☆ "निमित्त कारण कुछ भी नहीं कर सकता, मात्र उपादान से ही नरक आदि पर्यायें होती हैं"-ऐसी मान्यता एकान्त और शास्त्र विरुद्ध है।

☆ केवल उपादान से ही कार्य होता है अथवा केवल

निमित्त से ही कार्य होता है, ये दोनों मान्यताएं मिथ्या, एकांत और शास्त्र विरुद्ध है।

☆ शुद्ध जैन सिद्धान्त अनुसार तो यह मान्यता है कि कार्यसिद्धि में उपादान और निमित्त दोनों की आवश्यकता है।

☆ भव्य जीवों को मोक्ष मार्ग में लगाने की भाव दया से आत्मा में ऐसा पवित्र रस झरने लगता है कि जिस रस से आत्मा तीर्थंकर नाम कर्म को निकाचित करती है।

☆ **जन्म नी शुं महत्ता छे आयु लगी ज अस्ति छे।**
गुणों थी तूं अमर रहेजे, पछी आ देह पस्ति छे॥

☆ भगवान् के कहे हुए इस निर्ग्रन्थ धर्म पर यदि इतनी श्रद्धा जम जाय कि इस धर्म की, इस शुद्ध स्थानकवासी जैन धर्म की आराधना मुझे मुक्ति प्रदान करेगी और जव तक मुक्ति दे सके इतनी सीमा तक का मैं धर्म नहीं कर सकूँ तब तक मेरे द्वारा किया जाने वाला धर्म मुझे संसार में भी सुख देगा और धर्म की आराधना में अनुकूलता पैदा करेगा तो ऐसा समझना कि अपने सुख का दहाड़ा शुरू हुआ।

☆ मुझे चाहे जितनी और चाहे जैसी इच्छित ऐसी सांसारिक सुख सामग्री मिले तो भी मुझे वह उपादेय (ग्रहण करने योग्य) नहीं लगनी चाहिये और उनका संयोग जन्य सुख भी मुझे वास्तविक कोटि का सुख नहीं लगना चाहिये।

☆ जैसे समुद्र के तल में रत्न होते हैं वैसे ही अरिहन्त देव के मत रूपी सागर में भी शील रत्न रहे हुए हैं।

☆ कर्म निर्जरा की भावना वाले को तो कितने भी भीषण कष्टों का सामना होने पर उस समय दुर्ध्यान नहीं आवे ऐसी सामर्थ्य (क्षमता) जुटानी चाहिये।

☆ शक्ति होने पर भी जो इस निर्ग्रन्थ धर्म को अंगीकार करने का उद्यम नहीं करता वह भयंकर भूल कर रहा है।

☆ भवाभिनंदी जीव को अच्छा बनने के स्थान पर अच्छा दिखने की चिंता रहती है।

☆ जैसे न्यायाधीश सत्य और असत्य को समझने के बाद भी सत्य का समर्थन कर असत्य का उन्मूलन करने वाला नहीं बनता तो वह न्याय के आसन पर बैठने के योग्य नहीं रहता उसी प्रकार धर्म में भी समझना चाहिये।

☆ चारित्र संपन्न साधु और शिथिलाचारी साधु दोनों समान नहीं होते किन्तु जो तथाकथित श्रावक इन दोनों को समान मानते हैं, वे अविवेकी और मूढमति हैं।

☆ आत्मा ज्ञान स्वरूप है उसके ज्ञान में स्व और पर के गुण तथा दोष दोनों दिखाई देते हैं। यह तो सहज और स्वाभाविक है कि जो गुणावान् व्यक्ति होता है वह जितने सम्मान का पात्र होता है उतना गुण रहित व्यक्ति नहीं होता।

☆ परनारी नी प्रीतड़ी बेधारी तलवार।
कापे दिल नी पांखडी, सलगावे संसार॥

☆ सम्यग्दर्शन किसे कहा जाय? दुनिया के जितने भी अयोग्य पदार्थ अथवा कहो कि आत्महित की नाशक जितनी भी सामग्री है उस पर अरुचि और आत्मा के लिए

उपकारक-मोक्ष मार्ग में सहायक रूप जितनी सामग्री है उस पर रुचि, यही सम्यग्दर्शन (सही समझ) है।

☆ दुःख रहित संपूर्ण तथा शाश्वत सुख एक मात्र सिद्ध दशा में ही रहा हुआ है।

☆ हे भाई! तू स्थिर हो, स्थिर बनना अर्थात् पौद्गलिक पदार्थों की इच्छा भी मन में से निकाल देना और आत्मा के ज्ञानादि गुणों की तरफ दृष्टि लगाना।

☆ बाह्य धन संपत्ति कीर्ति आदि प्राप्त करने की दौड़धूप से अंत में जीव को दुर्भाग्य, क्लेश और खेद ही होता है क्योंकि वह अस्थिर है और उनका कभी न कभी नाश अथवा वियोग निश्चित है।

☆ विक्षिप्त या व्याकुल चित्त वाला व्यक्ति ज्ञान, चारित्र या समाधि भाव में स्थिर नहीं हो सकता।

☆ जो स्त्रीहृदय परपुरुष के प्रति राग धारण करता है उस स्त्री को कुलटा कहा जाता है, असती कहा जाता है, उसके मधुर शब्दों और सेवा का कोई मूल्य नहीं। इसी प्रकार जिस मनुष्य के हृदय में पर पुद्गलों की, बाह्य पदार्थों की आसक्ति है, इस लोक और परलोक के पौद्गलिक सुखों की स्पृहा (इच्छा) है, वह मनुष्य वाणी या काया से चाहे जितनी धर्म क्रियाएं करें, वे उसका कल्याण नहीं करती।

☆ हृदय में संसार की वासना और आचरण में धर्म दिखाने वाला मनुष्य कुलटा स्त्री जैसा है....ऐसा मनुष्य धर्मक्रियाओं के द्वारा अपने पौद्गलिक सुखों की वासना सफल करने की आशा रखता है। उसका मौन या

उसकी सभी धर्मक्रिया उसकी आत्मा के शुद्धि करण में निष्फल जाती है। उसके मानसिक संताप और क्लेश बढते ही जाते हैं अतः कहा जाता है कि तुम्हारे मन को पौद्‌गलिक सुखों की आसक्ति के पीछे चंचल मत बनाओ।

☆ जिनेश्वर भगवान् द्वारा प्ररूपित साधु धर्म और श्रावक धर्म की अनेक पवित्र क्रियाएं अनमोल औषधि है और इस औषधि के द्वारा अनन्त अनन्त आत्माओं ने महान् आत्म विशुद्धि प्राप्त की है।

☆ कंईक अेवा मीठाबोला मानवी,
जो जे प्रभु! तने अेक दी' छेतरी जवाना,
कोने कहूं मारा, कोने कहूं पराया
दुःख दर्द छे, जीवनने रस्तो बतावनारा॥

☆ समाधि के हेतु से धन आदि की इच्छा श्रावकों की हो, यह संभव है।

☆ श्रावकों को सदैव इस प्रकार की भावना भानी चाहिये कि कब मेरा चारित्र मोहनीय कर्म क्षय हो और कब मैं संयम ग्रहण करूँ?

☆ धर्म के फल रूप में पौद्‌गलिक सुख मांगने से सम्यक्त्व कलंकित होता है और कदाचित् चला भी जाता है।

☆ धर्म वही कहलाता है जो तीर्थकर भगवान् की आज्ञा से प्रतिबद्ध हो यानी कि तीर्थकर भगवान् की आज्ञा के अनुसार हो।

☆ श्री संघ की कीमत श्री तीर्थकर देव की आज्ञा की

आधीनता का ही आभारी है अन्यथा वो संघ वास्तविक रूप से संघ ही नहीं है।

☆ श्री जिनशासन का रस दिल में पैदा हुए बिना कोई भी जीव दुःख मात्र से मुक्त नहीं हो सकता और एकांत सुखमय अवस्था को कभी प्राप्त कर ही नहीं सकता।

☆ चतुर्विध संघ का सर्व प्रथम कर्त्तव्य जैन आगम और जैन सिद्धान्तों की रक्षा करना ही है।

☆ सच्चा संघ सुधार के नाम पर स्वच्छंदता से होती उत्सूत्र प्ररूपणा को सहन कर ही नहीं सकता है।

☆ विद्वान् कहलाने वाले श्रद्धाभ्रष्टों की एक फैशन हो गई है कि शास्त्र में अपने अनुकूल मनमानी वस्तु नहीं मिले, स्वयं के मनोनुकूल बात नहीं हो तो वे शास्त्र को ही अप्रमाणित कर देते हैं अथवा यह पाठ पीछे से प्रक्षिप्त है, ऐसा कह कर उस शास्त्र पाठ की अवगणना करते हैं।

☆ साहूकार तो वही है जो कर्ज लेने में अप्रसन्न और कर्ज चुकाने में प्रसन्न होता है। उसी प्रकार मोक्षार्थी तो वही है जो कर्म का कर्ज लेने में नाखुश और कर्मों का कर्ज चुकाने में खुश होता है।

☆ बिगड़े हुए दूध से ठंडी और ताजी छाछ उत्तम है उसी प्रकार बिगडेल (श्रद्धा व चारित्र से भ्रष्ट) साधु से गुणधारी श्रावक उत्तम है।

☆ लाखों रूपयों के बहुमूल्य आभूषणों से सुसज्जित हो कर कोई महिला भैंस को घास डालने जाती है तो भैंस

मात्र घास के सामने ही देखती है किन्तु रूप और अलंकार की तरफ नहीं देखती उसी प्रकार मुनि को गोचरी के समय रूप नहीं किन्तु एषणा समिति की ओर ही ध्यान रखना चाहिए, अन्यत्र नहीं।'

☆ गन्ने के रस को अच्छा मान कर स्नान करना अथवा वस्त्र धोना मूर्खता है उसी प्रकार मानव भव को उत्तम मान कर भोगों में आनंद मानना मूर्खता है।

☆ जैसे राजा कोमल होने पर भी युद्ध का प्रसंग आने पर तीक्ष्ण बाणों (प्रहारों) को वीरता पूर्वक सहन करता है वैसे शालिभद्र आदि संसार के सामान्य दुःखों को तो देख नहीं सकते किन्तु दीक्षा के बाद अनेक परीषहों के विजेता बनते हैं।

☆ एक ही रीति एक आवाज, जगमग चमके जैन समाज।

☆ मरने वाले की चिता पर चाहने वाला कोई चढ़ता नहीं।
कहते हैं कि पीछे मर जाऊँगा पर कोई मरता नहीं।
देह को आग में जलते देख कोई पीछे गिरता नहीं।
अरे! आग में तो क्या गिरे राख को भी कोई छूता नहीं।।

☆ असातना और अंतराय ये दोनों तेरी आत्मा का भयंकर नुकशान करेंगे अतः इन दो बातों से सदा दूर-सुदूर रहना।

☆ जो साधु आधाकर्मी, औद्देशिक, क्रीतकृत आदि आहार को अग्नि की तरह सर्वभक्षी बन कर खाता है वह कुसाधु दुर्गति का कामी है।

☆ जिन्होंने समृद्धि को कचरा जान कर फैंक दी वे मस्त फकीर क्या श्रीमंतों की चमकती मोटरों को देख कर

उनकी समृद्धि की प्रशंसा कर सकते हैं? कचरे को समृद्धि कह सकते हैं? गरीब और श्रीमंत श्रावक के साथ अपने व्यवहार में फर्क (अंतर) रख सकते हैं?

☆ द्वेष जितना नुकशान नहीं करता उतना राग करता है। राग ही द्वेष की उत्पत्ति का स्थान है अतः दोनों कर्म बीजों से जितना संभव हो सके उतना दूर ही रहना।

☆ मायावी व्यक्ति मिथ्यादृष्टि है। सरलता वाले जीवों को ही धर्म परिणमता है।

☆ बाह्य परिग्रहों को छोड़ना जितना सरल है उतना ही आभ्यंतर परिग्रहों को छोड़ना मुश्किल है।

☆ 'कोटि भवों के संचित कर्म तप से क्षय होते हैं' - प्रभु का यह वाक्य सदैव याद रखने योग्य है।

☆ तीनों ही काल में सिद्ध हुई वस्तु का नाम सिद्धान्त है अतः सिद्धान्त में कांटछांट, कम ज्यादा करने वाले अभी तक धर्म को समझे ही नहीं है।

☆ अरे जीवड़ा! आरंभ और परिग्रह अनर्थ का मूल है यह बात कितनी बार कहना? क्या जिन्दगी के अमूल्य क्षण धन, संपत्ति परिवार के पीछे नष्ट करना योग्य (उचित) है?

☆ अरे भोले प्राणी! जरा विचार तो कर जिन्हें तू तेरा मानता है वे सगे संबंधी धन दौलत पत्नी पुत्री क्या वास्तव में तेरे थे, तेरे हैं और भविष्य में तेरे ही रहने वाले हैं?

☆ दुःख में द्वेष करना और सुख में राग करना असमाधि

है। सुख में राग नहीं और दुःख में द्वेष नहीं, इसी का नाम समाधि है।

☆ अमने नांखो जिंदगी नी आगमां,
आगने पण फेरवीशुं बागमां।
सर कटीशुं आखरे सहु मोरचा,
मोत ने पण आववा दो लाग मां॥

☆ जैसे सुवर्ण रस की बूंद-बूंद का उपयोग सैकड़ों तोला सोना बनाने में किया जाता है, उसी प्रकार मानव जीवन के क्षण-क्षण का उपयोग करना सीख लिया जाय तो चित्त विशुद्धि, पापक्षय और पुण्यानुबंधी पुण्योपार्जन किया जा सकता है।

☆ धर्म पुरुषार्थ को जारी रखना है तो समय बरबाद हो जाने पर अफसोस करो और भविष्य में समय बरबाद नहीं हो इसके लिए सावधान हो जाओ।

☆ पाप का भय, पाप स्थानकों से घृणा और पाप की सामग्री से अनुराग नहीं, इन तीन से चित्त निर्मल रहता है।

☆ वैराग्य ही इस मानव जीवन का अनमोल रत्न है, इसके बिना यह मानव जीवन व्यर्थ है।

☆ जिसके भाव और क्रिया दोनों शुद्ध होते हैं उसका ही कल्याण होता है।

☆ जो जीव भाव की महत्ता स्थापित कर क्रिया की उपेक्षा करते हैं आचार की उपेक्षा करते हैं वे अपनी आत्मा की ही वंचना करते हैं।

☆ जिसके भाव शुद्ध हैं, उसको क्रिया और आचार भी शुद्ध रखने का मनोरथ होता ही है।

☆ भव्य जीवों के लिये तो शुद्ध क्रिया, भावों को शुद्ध करने का महान् निमित्त है।

☆ स्त्री, पुत्र, धन, माता-पिता ये सभी संसार में माया अथवा इन्द्रजाल समान है कि जिसके लिए मनुष्य अनेक प्रकार के पापाचरण करता है।

☆ धर्म के अलावा मनुष्य के लिए अन्य कोई सहायक ही नहीं है।

☆ वह ज्ञान, ज्ञान ही नहीं जिसके द्वारा आगम से विपरीत प्रतिपादन होता है।

☆ शुं कामनुं आ पर्व जो भाव थी आराधन करायना!
शुं कामनुं आ शीष, जो शत्रु चरणमां नमी जाय ना!
शुं कामनुं आ देह जो दानशील तप भावना मां जोडाय ना!
शुं कामनी आ जिह्वा, जो प्रेम थी 'मिच्छामि दुक्कडं' देवाय ना!
शुंकामना धर्म स्थानको ज्यां शुद्ध धर्मकार्य थाय ना!

☆ जो धर्म प्राणीमात्र की दया और सर्व जीवों के प्रति मैत्री अंतर आत्मा में प्रकट करता है वही सच्चा धर्म है, जिस धर्म में जीव मात्र की दया नहीं, सर्व जीवों के प्रति मैत्री भाव नहीं वे सभी धर्म नहीं धर्माभास मात्र हैं।

☆ चाहे जैसा भारी अपराध करने वालों पर भी भगवान् का कृपा भाव बना रहता है वैसे हमे भी भगवान् का ही अनुसरण करना चाहिये।

☆ सहन करने से जीवन खिलता है, आत्मा को शीघ्र

उन्नति होती है और साधु जीवन का या श्रावक जीवन का सुन्दर रसास्वाद अनुभव किया जाता है।

☆ संपूर्ण जगत् में विश्वास किसका? कर्म का? काल का? काया का या कुटुम्ब का? वास्तव में ये सभी अविश्वसनीय ही गिने जाते हैं, उसमें से जो कुछ साधना कर लेवे वह ही वास्तविक कमाई है।

☆ संसारी स्नेहीजनों ने आत्मा का पतन किया है इतना ही नहीं दुर्गति के द्वार भो खोल दिये हैं।

☆ तुम्हारे बिना किसी का भी संसार अटकने वाला नहीं है।

☆ जो साधु भक्तों के भौतिक दु:खों को दूर करने और उन्हें पौद्गलिक सुखों को प्राप्त करवाने की प्रवृत्ति करते हैं वे जैन साधु नहीं है।

☆ आरम्भ समारम्भ में धर्म मानना ये धर्म की क्रूर मजाक है।

☆ धर्म के नाम पर सावद्य और हिंसा युक्त क्रियाओं की प्ररूपणा करने वाले अनार्य हैं उनके हृदय में प्राणियों के प्राणों की चिंता नहीं है।

☆ भूख्या कोई सुवे नहि, साधु संत समाय,
अतिथि भोठो नव पडे, आश्रित ना दुभाय,
जे आवे मम आंगणे आशिष देतो जाय,
स्वभाव एवो आपजो, सौ ईच्छे मम हित,
शत्रु इच्छे मित्रता, पडौशी इच्छे प्रित,
विचार, वाणी वर्तन सौनु याचु प्रेम,
सगा स्नेही के शत्रु नुं इच्छं कुशल क्षेम॥

☆ हे भाई ! तू सत्य और असत्य, सुदेव और कुदेव,

सुगुरु और कुगुरु, सुधर्म और कुधर्म में विवेकी बन जा। तू सत्य, सुदेव, सुगुरु और सुधर्म को अंगीकार कर और असत्य, कुदेव, कुगुरु और कुधर्म को छोड़ दे, ऐसा किये बिना तू सम्यग्-दर्शन को प्राप्त कर ही नहीं सकेगा।

☆ कितनेक धर्माचार्य कहलाने वाले भी मध्यस्थता के नाम पर, स्याद्वाद के नाम पर, विशाल दृष्टि के नाम पर, असंप्रदाय के नाम पर अन्य मतवादियों को अच्छा बताने के लिए उत्सूत्र की प्ररूपणा करने वाले और उन्मार्ग के पोषक बनते दिखाई देते हैं ऐसे धर्माचार्य सत्य मार्ग को प्राप्त नहीं हुए हैं, अत्यंत पीड़ीत महत्त्वाकांक्षा से लुभाने वाले ऐसे धर्माचार्य सत्य मार्ग का खून करने में और असत्य के प्रचार में अग्रणी होते हैं।

☆ आत्मा ज्ञान स्वरूप है, उसके ज्ञान में स्व और पर के गुण और दोष सभी दिखाई देते हैं अतः तू दूसरों के गुणों को देख कर गुणवान् बनने का प्रयत्न कर, तू दूसरों के दोष देख कर ऐसे दोष तेरे में प्रवेश न करे उसकी जागृति रख। विवेकी आत्मा अपने और दूसरे दोनों के गुणों और दोषों को देखने वाली होती है और स्व-पर का यथार्थ मूल्यांकन करने वाली होती है।

☆ गुणों की प्रति आदर और दोषों के प्रति तिरस्कार की वृत्ति ही मनुष्य को महान् बनाती है। दोषों वाले

व्यक्ति के प्रति तिरस्कार वृत्ति नहीं रखनी चाहिये। तिरस्कार और द्वेष कषाय है, इसके द्वारा तो अपनी आत्मा का बहुत ही अहित होता है।

☆ शुद्ध देव, गुरु और धर्म को मानने वाला, अवसर आने पर शुद्ध और अशुद्ध देव-गुरु और धर्म के स्वरूप को समझाता है तो यह कोई निन्दा नहीं है। सोने को सोना कहना और पीतल को पीतल कहना कोई राग-द्वेष या निंदा नहीं परन्तु यथार्थ विवेक ही है।

☆ विवेकी और ज्ञानी आत्मा भी यदि यथाशक्ति और आवश्यकता होने पर भी सत्य के समर्थक और असत्य के उन्मूलक नहीं बने तो उनका विवेक और ज्ञान किस काम का? फिर सत्य के अर्थी आत्माओं को सत्य की प्राप्ति कहाँ से होगी? तीर्थंकर भगवंत स्वयं भी सत्य मार्ग के समर्थक और असत्य मार्ग के निषेधक होते हैं।

☆ "काल तणी ए क्रूर थपाटे, जीवन ज्योति बुझाय,
उगती कोमल कुसुमकलिका संध्याओ करमाय,
कर्म ने मंजुर हशे शुं कांई नहीं समजाय,
जाग जाग ओ प्यारा आत्मन्, जिंदगी चाली जाय॥"

☆ सम्यक्त्व प्राप्ति के बाद सुदेव सेव्य लगते हैं, सुगुरु उपासक लगते हैं सुधर्म आचरणीय लगता है। संसार में इच्छा करने योग्य, प्राप्त करने योग्य और रखने योग्य यदि कुछ है तो वह 'सम्यग्दर्शन' ही है।

☆ सम्यक्त्व अर्थात् धर्म की सच्ची भूख।

☆ जैसे भूखा व्यक्ति भोजन के विना नहीं रह सकता

उसी प्रकार सम्यक्त्व आने के बाद जीव को धर्म प्रवृत्ति रूपी भोजन के बिना रहा नहीं जाता।

☆ संसार के सुखों को अच्छा मानने वाले के पास धर्म नहीं होता और न ही उसे धर्माचरण के भाव आते हैं।

☆ पौद्गलिक सुख ही जीव को संसार में से मोक्ष में जाने की इच्छा नहीं करने देता अतः सुख बुरा है, छोडने जैसा है।

☆ पौद्गलिक सुख इच्छा करने योग्य नहीं, प्राप्त करने योग्य नहीं, रखने योग्य नहीं और भोगने योग्य भी नहीं है। पौद्गलिक सुख जाये तो रोना योग्य नहीं, छोड़ कर जाने का समय आये तो दुःखी होना योग्य नहीं, सारांश यह है कि पौद्गलिक सुख निकृष्ट से निकृष्ट है।

☆ दुनिया के सुखों की इच्छा करना पाप है। उसके लिये मेहनत करना महापाप है। मिले तो पाप है, मिलने के बाद भोगने का मन हो जाय तो पाप है, उसके चले जाने पर दुःख हो तो पाप है और मरते समय मुझे छोड़ना नहीं ऐसा विचार करते हुए मरे तो पाप है।

☆ सुखशीलिया, स्वच्छंदाचारी, निर्याणमार्ग का शत्रु, आज्ञा से भ्रष्ट हुए बहुत से लोग होते हैं किन्तु उसे 'संघ' नहीं कहा जाता।

☆ एक साधु, एक साध्वी, एक श्रावक और एक श्राविका भी यदि आज्ञा युक्त है तो वह संघ है क्योंकि आज्ञानुसार चलने वाला संघ ही संघ है अन्यथा तो वह हड्डियों का ढेर हैं।

☆ जब तक संसार का रस जीवित है और बाह्य भाव की

प्रवृत्तियों में कटौती करने का मन नहीं, तब तक धर्म का रस और वैराग्य भाव जीवन में नहीं आयेगा।

☆ संसार की सभी प्रवृत्तियाँ करते रहने से खोटे निमित्तों में फंसा जाता है अतः इनकी कमी कर देनी चाहिये।

☆ मोक्ष में जाने वाले जीवों के लिए आगम ही एक चक्षु है, आगम के ज्ञान से अतिन्द्रिय पदार्थों का स्वरूप भी जाना जाता है अतः मोक्ष के अर्थी जीवों को सब प्रकार से आगम की पर्युपासना करनी योग्य है।

☆ जैन शास्त्र कहते हैं कि माता-पिता के उपकार इतने अधिक हैं कि इनका बदला चुकाया नहीं जा सकता, सिवाय इसके कि पुत्र इन्हें सम्यक्त्व आदि धर्म में लगाये, धर्म में लगाना अन्य उपकारों की अपेक्षा अधिक कीमती है।

☆ काल का कोई भरोसा नहीं, न जाने यह कब आ जाय?

☆ अज्ञानी व्यक्ति आरंभ समारंभ से निवृत्त नहीं होता, उसके द्वारा किये हुए आरंभ और समारंभ उसके दुःख के लिए ही है।

☆ मायावी कषायात्मा प्रमादी बन कर बार-बार गर्भ में आती है।

☆ लौकिक सुखों की इच्छा का त्याग करना ही परमार्थ सुख की प्राप्ति का उपाय है।

☆ परम आनंद की उत्पत्ति कषाय के अभाव से होती है।

☆ जिन्होंने अनात्मीय पदार्थों में से आत्म बुद्धि का त्याग कर दिया है, वही सच्चा सुखी है।

☆ पौद्गलिक सुखों की इच्छा ही सभी दुःखों की जड़ है और उनका त्याग ही शाश्वत सुखों का मूल है।

☆ सर्व वासनाओं में सबसे बड़ी वासना लौकेषणा है और जिसमें संक्लेश के अलावा और कुछ भी नहीं है।

☆ हे प्रभो! तेरे शासन को जितना अन्य दर्शनों का भय नहीं, उससे अधिक भय जैन दर्शन को मानने का दावा करने वाले दुराग्रहियों का है।

☆ **जगत नां केवां अवनवा रंग,**
चडया कोई कुगुरुना संग।
ध्याननी वातो करे अभंग,
विरति वेची करे व्रतमां भंग॥

☆ जो मात्र इस लोक की सुख सुविधा के परवश हैं, परलोक से परांमुख है, विषयों के पिपासु हैं, ऐसे अज्ञानी व्यक्तियों के लिए संयम पालना कठिन है।

☆ जो धीर वीर गंभीर हिम्मतवान् और निश्चित किये हुए ध्येय को पकड़ कर रखने वाले हैं और जिनको ऐसा कठिन चारित्र मार्ग भी एक मात्र कर्त्तव्य रूप से मन में रुचा है उनके लिए संयम पालना जरा भी दुष्कर नहीं हैं।

☆ वणिक को रत्नद्वीप में अनेक प्रकार के रत्न मिले तो उसमें उसको किसी प्रकार का कष्ट प्रतीत नहीं होता उसी प्रकार चारित्र मार्ग की साधना में जो रत्नों से भी अधिक अनुपम लाभ प्राप्त होता है तो उसमें कष्ट क्या? सच्ची समझ वाले को तो चारित्र मार्ग में अपूर्व आनंद ही आनंद का अनुभव होता है।

☆ संसार में सभी दुःखी है, सुखी तो संसार का त्याग करने वाले मुनि ही है।

☆ वीर प्रभु के शासन में यद्यपि ज्ञान का महत्त्व है किन्तु ज्ञान से श्रद्धा का और श्रद्धा से संयम का महत्त्व अधिक है यह भूलने योग्य नहीं –

☆ **कटे तो कट जाना कोई बड़ी बात नहीं।**
जले तो जल जाना कोई बड़ी बात नहीं।
दटे तो दट जाना कोई बड़ी बात नहीं।
मरे तो मर जाना कोई बड़ी बात नहीं।।

सिद्धान्त की रक्षा के लिए कदाचित् मरना भी पड़े तो वह मरण नहीं किन्तु मरणोत्सव होगा, यह कभी नहीं भूले।

☆ जो जिनवाणी के लिए तन तोड़ प्रयत्न करते हैं, उनको अनंत जिनेश्वरों का धर्म मदद करता है, सिद्धांत की शक्ति उनको मदद करती है अतः सिद्धान्त अपने समक्ष हो और सामने लाखों करोड़ों लोग हों तो भी डरे बिना सिद्धांत का रक्षण करने के लिए तत्पर रहना चाहिये।

☆ सिद्धांत जीवन का परम प्रकाश है, द्वादशांगी की पेटी में अमूल्य खजाना भरा है उसके अनुसार साधुओं को आगम जीवी बनना है।

☆ जैसे प्रकाश स्तंभ के आधार पर सागर का किनारा दिखाई देता है उसी प्रकार शास्त्र रूप प्रकाश स्तंभ के आधार पर संसार का किनारा दिखाई देता है।

☆ आत्मा के ऐश्वर्य और तेज को प्रकट करने के लिए शास्त्र ही परम अवलंबनभूत है। यह सपने में भी भूलने जैसा नहीं है।

☆ आगम विपरीत खोटी मान्यताओं का खंडन करना दोष नहीं अपितु महान् गुण है।

☆ भगवान् श्री तीर्थंकर परमात्मा ने समता में ही धर्म कहा है। ज्यों-ज्यों समभाव का विकास होता है त्यों-त्यों धर्म की आराधना वर्धमान बनती जाती है।

☆ जो जिनेश्वर की आज्ञा अनुसार अनुष्ठान करते हैं वे पंडित हैं।

☆ क्रोध एक ऐसी अग्नि है जो दूसरों को भले ही न जलावें किन्तु स्वयं को तो जलाती ही है।

☆ कषायों का शमन ही शांति का मूल है, यह कदापि भूलने योग्य नहीं है।

☆ अंध श्रद्धा और अज्ञान कौनसा भीषण पाप नहीं करवाता?

☆ वाणी और व्यवहार की एकरूपता का नाम ही सच्ची विद्वता है।

☆ भगवान् की आज्ञानुसार आचरण करने वालों को भय किसका?

☆ जो कोई भी जीवन टिकाने के लिए, यश प्राप्ति के लिए, मान-पूजा, सत्कार के लिए, जन्ममरण से मुक्त होने के लिए, दुःखों को दूर करने के लिए अनेक जीवों की हिंसा करता है वह हिंसा उसके अहित और मिथ्यात्व का कारण है।

☆ धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा भी हिंसा है और हिंसा में तीन काल में धर्म नहीं हो सकता। हिंसा मात्र अधर्म और पाप रूप है।

☆ **रवि थी टले रात्रिनुं तिमिर, ज्ञान थी टले अज्ञान अंधकार।**
ज्ञानतणो ज्यां होइ समीर, ते तो भावे बन्या अमीर॥

☆ इस विश्व में जितने भी दु:ख दिखाई देते हैं वे सब अज्ञान और अनसमझ से ही उत्पन्न होते हैं।

☆ लोक में अज्ञान ही दु:ख और अहित का कारण है।

☆ जो ज्ञान आत्मा को पापभीरु बनावे, जडलक्षी मिटा कर चेतन लक्षी बनावे, रागी को विरागी बनावे, वही सच्चा ज्ञान है।

☆ सूर्य जैसा तेजस्वी ज्ञान और चन्द्र समान निर्मल चारित्र, इन दोनों का समन्वय ही जिनेश्वर मार्ग है।

☆ धार्मिक शिक्षण ही मानव को जीवन जीने की कला तथा व्यावहारिक दक्षता सीखाकर आत्माका आध्यात्मिक उत्थान करता है।

☆ जैसे सूर्य उदित होने पर अंधकार का नाश होता है चोर भग जाते हैं और कीचड़ सूख जाता है उसी प्रकार ज्ञान रूपी सूर्य के उदयमान होते ही अज्ञान अंधकार का नाश हो जाता है, कषाय रूपी चोर भग जाते हैं और भोग रूपी कीचड़ सूख जाता है।

☆ **परीक्षा अने पंडित वध्यां, पण कार्य तेथी शुं सध्या?**
दंभ, दर्प जो न टल्या, शुं वैराग्यना वाघा धर्या?

☆ मोक्ष के अभिलाषी को देवलोक और मनुष्य लोक के सुखों की भी इच्छा नहीं होती।

☆ जो जीव समाधि मरण से मरते हैं उसकी मृत्यु के बाद उनकी दुर्गति होती ही नहीं है।

☆ राग एक ऐसी आग है जो वैराग्य और निःस्पृहता को जला देती है।

☆ सच्चा जैन जगत् के सभी जीवों के प्रति मैत्री भाव रखता है परन्तु वह अपने 'अमूढदृष्टि' अंग की रक्षा पहले करता है उसकी दृढ़ श्रद्धा होती है कि जैन दर्शन सर्वज्ञ कथित है और श्रेष्ठोत्तम है। अन्य दर्शनों में वास्तविक मोक्ष मार्ग है ही नहीं। वह कभी भी अन्य दर्शन के प्रति आकर्षित नहीं होता।

☆ मूढ दृष्टि वाले को जैन सिद्धान्त का वास्तविक ज्ञान या महात्म्य नहीं होता वह तो जैन सिद्धान्त के खंडन में भी 'हाँ.....जी....हाँ' करने वाला बन जाता है। असंप्रदायिकता, मित्रता, विशालता, सज्जनता और उदारता के नाम पर वह सिद्धान्त के वचनों को बेच देता है और उटपटांग समझौता करता है।

☆ यदि तुम परम पद-मोक्ष चाहते हो तो तीन लोक के उद्धारक जिनवचनों पर श्रद्धा करो उससे तुम्हारा जगत मे निर्मल यश भी फैलेगा।

☆ आचार और विचार दोनों को पवित्र रखों।

☆ संसार का क्षण जीवी आनंद उडे तो मोक्ष का रस जगे।

☆ एक वार शास्त्रों के रस को भी चख कर देखो। शास्त्रों का रस चखने के वाद तुम्हें संसार के सभी रस फिके जान पडेंगे।

☆ गुड और गोबर, पीतल और सोना समान नहीं है उसी प्रकार सर्व धर्म समान नहीं है। मांसाहारी, हिंसामय, नास्तिक मत और अन्य विपरीत मान्यता वाले धर्म कदापि शुद्ध जैन धर्म की तुलना में नहीं आ सकते अतः हे भव्यो! तुम इस शुद्ध धर्म का ही दृढ़ता पूर्वक पालन करो। इससे तुम्हारे सभी दु:खों का अंत आयेगा।

☆ सुख ऐसे स्वाभिमानी हैं कि बिना बुलाये नहीं आते जबकि दु:ख ऐसे बेशर्म है कि बिना बुलाये (न्यौता) भी आ जाते हैं।

☆ आत्मा के लिए जो कुछ भी अच्छा है वह अच्छे के रूप में दृष्टिगोचर होना और अच्छा लगना तथा जो कुछ भी खराब है वह खराब रूप से नजर आना और अच्छा नहीं लगना, यह एक महान् गुण है।

☆ श्रुतज्ञान का सार सम्यक् चारित्र है और सम्यक् चारित्र का सार मोक्ष है।

☆ जो तिराने का काम करने वाले हैं उनके पास से डूबोने का काम करवाना महा अधमता है।

☆ नुकशान सामने वाले से नहीं किन्तु अपने अशुभोदय से है अतः सामने वाले से नुकशान मानना मिथ्या-बुद्धि है। फिर उस पर क्रोध करने से अपनी बुद्धि बिगड़ती है।

☆ जन्म मरण आदि दु:खद विडम्बनाओं से भरे इस संसार में धर्म ही सारभूत है।

☆ आत्मा के लिए पैसा है पैसे के लिए आत्मा नहीं। आत्मा को बिगाड़ कर पैसे को सुधारना होता ही नहीं।

☆ जीवन को धर्म प्रधान बनाओ। समझो कि पैसा और टका, खान और पान, स्नेही और सम्मान यह सब तो ठीक ही है। किन्तु सच्ची–चीज तो धर्म ही है यह कभी नहीं भूलना चाहिये।

☆ ज्ञानी पुरुषों ने मनुष्य जीवन की ही महत्ता समझाई है वह जिसे समझ में आ जाय उसे ऐसा लगता है कि मेरा एक भी क्षण व्यर्थ या अशुभ अध्यवसाय में नहीं जाये। अशुभ अध्यवसाय में जाता हुआ क्षण कोहीनूर हीरे की संपत्ति खोने के समान लगे। उसे आडे टेढे विचार खाली दिमाग या फालतू बातचीत में, गप्पे मारने में समय जाता है तो छाती पर किसी ने प्रहार किया हो, ऐसा लगता है।

☆ सत्य मार्ग का मंडन और असत्य मार्ग का खंडन करना यह जिनशासन में एक महान् गुण तथा शासन की प्रभावना और तीर्थंकर नाम गोत्र बांधने का कारण माना जाता है जबकि आज अपने ही समाज के अधिकांश लोग इसे ईर्ष्या, निंदा और द्वेष रूप में गिनते हैं।

☆ सोने को सोना और पीतल को पीतल कहना यह निंदा नहीं है। वस्तु का जैसा स्वरूप है उसको वैसा ही समझना चाहिए।

☆ मले ना मनसूबा थी माल, तूं नीरख तारा हाल।
खरोजो करी शकाशे ख्याल, तो जरूर थवानो न्याल॥

☆ तप करने की तीव्र उत्कंठा से बहुत कर्मो का नाश हो जाता है।

☆ तप आत्मा की शक्ति को बढाने वाला है।

☆ तप करने में आत्मा को कष्ट होता है किन्तु तप से आत्मा शुद्ध और निर्मल बनती है और विकार शांत हो जाते हैं।

☆ तप भाव मंगल गिना जाता है। तप के द्वारा बहुत सी लब्धियाँ प्राप्त होती है किन्तु उन लब्धियों के प्रति धर्मात्मा निस्पृह ही होता है।

☆ तप का आदर किये बिना कर्म क्षय नहीं होते अतः कर्म मल को दूर करने हेतु तीव्र तप करने में शूरवीर बनो।

☆ संसार में दुःखों का पार नहीं और संयम में सुख की सीमा नहीं।

☆ आगम (शास्त्र) ज्ञान बिना जीव ज्ञान-चक्षु रहित है।

☆ धर्मात्मा आगम-चक्षु से अपने आत्म-स्वरूप और मोक्ष मार्ग को देखते हैं।

☆ सच्ची श्रद्धा के बिना साधुपना नहीं होता।

☆ उत्सूत्र प्ररूपणा करते हुए कदाचित् संपूर्ण जगत् ही अपने पैरों में गिरे, अपनी प्रशंसा करे और अपना सम्मान करे किन्तु उसकी कीमत एक कोड़ी की भी नहीं और आगम अनुसार सत्य प्ररूपणा करते हुए कदाचित् मारणांतिक कष्ट भी आ पडे तो वह मरण नहीं किन्तु महोत्सव है।

☆ "चेन चाला तो बहुये कर्या, धतींग धरी धर्मी ठर्या,
तेथी शुं भवसागर तर्या के पोते प्रकाशी पोते मर्या?"

☆ धर्म का ढोंग करने से आत्म कल्याण नहीं होता।

☆ जीवन को धर्म प्रधान बनाओ। समझो कि पैसा और टका, खान और पान, स्नेही और सम्मान यह सब तो ठीक ही है। किन्तु सच्ची-चीज तो धर्म ही है यह कभी नहीं भूलना चाहिये।

☆ ज्ञानी पुरुषों ने मनुष्य जीवन की ही महत्ता समझाई है वह जिसे समझ में आ जाय उसे ऐसा लगता है कि मेरा एक भी क्षण व्यर्थ या अशुभ अध्यवसाय में नहीं जाये। अशुभ अध्यवसाय में जाता हुआ क्षण कोहीनूर हीरे की संपत्ति खोने के समान लगे। उसे आडे टेढे विचार खाली दिमाग या फालतू बातचीत में, गप्पे मारने में समय जाता है तो छाती पर किसी ने प्रहार किया हो, ऐसा लगता है।

☆ सत्य मार्ग का मंडन और असत्य मार्ग का खंडन करना यह जिनशासन में एक महान् गुण तथा शासन की प्रभावना और तीर्थकर नाम गोत्र बांधने का कारण माना जाता है जबकि आज अपने ही समाज के अधिकांश लोग इसे ईर्ष्या, निंदा और द्वेष रूप में गिनते हैं।

☆ सोने को सोना और पीतल को पीतल कहना यह निंदा नहीं है। वस्तु का जैसा स्वरूप है उसको वैसा ही समझना चाहिए।

☆ मले ना मनसूबा थी माल, तूं नीरख तारा हाल।
खरोजो करी शकाशे ख्याल, तो जरूर थवानो न्याल॥

☆ तप करने की तीव्र उत्कंठा से बहुत कर्मो का नाश हो जाता है।

☆ तप आत्मा की शक्ति को बढाने वाला है।

☆ तप करने में आत्मा को कष्ट होता है किन्तु तप से आत्मा शुद्ध और निर्मल बनती है और विकार शांत हो जाते हैं।

☆ तप भाव मंगल गिना जाता है। तप के द्वारा वहुत सी लब्धियाँ प्राप्त होती है किन्तु उन लब्धियों के प्रति धर्मात्मा निस्पृह ही होता है।

☆ तप का आदर किये विना कर्म क्षय नहीं होते अत: कर्म मल को दूर करने हेतु तीव्र तप करने में शूरवीर वनो।

☆ संसार में दु:खों का पार नहीं और संयम में सुख की सीमा नहीं।

☆ आगम (शास्त्र) ज्ञान विना जीव ज्ञान-चक्षु रहित है।

☆ धर्मात्मा आगम-चक्षु से अपने आत्म-स्वरूप और मोक्ष मार्ग को देखते हैं।

☆ सच्ची श्रद्धा के बिना साधुपना नहीं होता।

☆ उत्सूत्र प्ररूपणा करते हुए कदाचित् संपूर्ण जगत् ही अपने पैरों में गिरे, अपनी प्रशंसा करे और अपना सम्मान करे किन्तु उसकी कीमत एक कोड़ी की भी नहीं और आगम अनुसार सत्य प्ररूपणा करते हुए कदाचित् मारणांतिक कष्ट भी आ पडे तो वह मरण नहीं किन्तु महोत्सव है।

☆ "चेन चाला तो वहुये कर्या, धतींग धरी धर्मी ठर्या,
तेथी शुं भवसागर तर्या के पोते प्रकाशी पोते मर्या?"

☆ धर्म का ढोंग करने से आत्म कल्याण नहीं होता।

☆ जीवन को धर्म प्रधान बनाओ। समझो कि पैसा और टका, खान और पान, स्नेही और सम्मान यह सब तो ठीक ही है। किन्तु सच्ची-चीज तो धर्म ही है यह कभी नहीं भूलना चाहिये।

☆ ज्ञानी पुरुषों ने मनुष्य जीवन की ही महत्ता समझाई है वह जिसे समझ में आ जाय उसे ऐसा लगता है कि मेरा एक भी क्षण व्यर्थ या अशुभ अध्यवसाय में नहीं जाये। अशुभ अध्यवसाय में जाता हुआ क्षण कोहीनूर हीरे की संपत्ति खोने के समान लगे। उसे आडे टेढे विचार खाली दिमाग या फालतू बातचीत में, गप्पे मारने में समय जाता है तो छाती पर किसी ने प्रहार किया हो, ऐसा लगता है।

☆ सत्य मार्ग का मंडन और असत्य मार्ग का खंडन करना यह जिनशासन में एक महान् गुण तथा शासन की प्रभावना और तीर्थकर नाम गोत्र बांधने का कारण माना जाता है जबकि आज अपने ही समाज के अधिकांश लोग इसे ईर्ष्या, निंदा और द्वेष रूप में गिनते हैं।

☆ सोने को सोना और पीतल को पीतल कहना यह निंदा नहीं है। वस्तु का जैसा स्वरूप है उसको वैसा ही समझना चाहिए।

☆ मले ना मनसूबा थी माल, तूं नीरख तारा हाल।
खरोजो करी शकाशे ख्याल, तो जरूर थवानो न्याल॥

☆ तप करने की तीव्र उत्कंठा से बहुत कर्मो का नाश हो जाता है।

☆ तप आत्मा की शक्ति को बढाने वाला है।

☆ तप करने में आत्मा को कष्ट होता है किन्तु तप से आत्मा शुद्ध और निर्मल बनती है और विकार शांत हो जाते हैं।

☆ तप भाव मंगल गिना जाता है। तप के द्वारा बहुत सी लब्धियाँ प्राप्त होती है किन्तु उन लब्धियों के प्रति धर्मात्मा निस्पृह ही होता है।

☆ तप का आदर किये बिना कर्म क्षय नहीं होते अतः कर्म मल को दूर करने हेतु तीव्र तप करने में शूरवीर बनो।

☆ संसार में दुःखों का पार नहीं और संयम में सुख की सीमा नहीं।

☆ आगम (शास्त्र) ज्ञान बिना जीव ज्ञान-चक्षु रहित है।

☆ धर्मात्मा आगम-चक्षु से अपने आत्म-स्वरूप और मोक्ष मार्ग को देखते हैं।

☆ सच्ची श्रद्धा के बिना साधुपना नहीं होता।

☆ उत्सूत्र प्ररूपणा करते हुए कदाचित् संपूर्ण जगत् ही अपने पैरों में गिरे, अपनी प्रशंसा करे और अपना सम्मान करे किन्तु उसकी कीमत एक कोड़ी की भी नहीं और आगम अनुसार सत्य प्ररूपणा करते हुए कदाचित् मारणांतिक कष्ट भी आ पडे तो वह मरण नहीं किन्तु महोत्सव है।

☆ "चेन चाला तो बहुये कर्या, धतींग धरी धर्मी ठर्या,
तेथी शुं भवसागर तर्या के पोते प्रकाशी पोते मर्या?"

☆ धर्म का ढोंग करने से आत्म कल्याण नहीं होता।

☆ जैन धर्म में विषय भोग की इच्छा से पुण्योपार्जन करने का निषेध है।

☆ पुण्यशाली पुरुषों में चार गुण इस प्रकार होते हैं - १. जिनवाणी पर अत्यंत प्रेम २. मोक्ष की तीव्र अभिलाषा ३. स्वाभाविक दान वृत्ति ४. अनुकम्पा भाव।

☆ सम्यग्दृष्टि को जिनवाणी पर अटूट श्रद्धा होती है।

☆ सर्प से भी भयंकर विषय भोगों को छोड़ कर परम सुखदायी तीर्थंकर भाषित धर्म को अंतःकरण से स्वीकार करना चाहिये। हे देवानुप्रियो! जिनेश्वर प्रणीत धर्म को भाव से स्वीकार करो।

☆ धर्म कहां? धर्म सर्वज्ञ की आज्ञा में ही धर्म है।

☆ सुसाधु भगवंत, सर्वज्ञों ने जो कहा है उसी का उपदेश देते हैं।

☆ सम्यग् श्रद्धा के अभाव में ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं होता और चारित्र सम्यक् चारित्र नहीं होता।

☆ जिसका वेष तो साधु का होता है किन्तु जिसका हृदय साधु का नहीं होता वही जैन दर्शन से विपरीत उल्टी बातें करता है और प्रपंचों में ही समय बिगाड़ता है।

☆ जो जैन मुनि धर्मोपदेश के नाम पर धर्म के बदले, जिनवाणी के बदले अन्य ही वस्तुओं का उपदेश देता है वह मुनि धर्मोपदेश देने के योग्य ही नहीं है।

☆ जहाँ मोक्ष मार्ग और सत्य का खंडन होता हो वहाँ जानकार व्यक्ति से मौन रहना संभव नहीं है। ऐसे प्रसंग और ऐसी परिस्थिति में भी श्रद्धावंत और ज्ञानी

व्यक्ति यदि मौन रखते हैं तो उनके जाणपणे की कीमत ही क्या?

☆ प्रकट या गुप्त रूप से किया जाने वाला पाप गुप्त नहीं रह सकता। समय आने पर वह प्रकट होकर ही रहेगा।

☆ पाप छानुं ना रहे, छानुं करो के चोकमां,
अंते पोकारी उठशे, आ लोक के परलोकमां॥

☆ हमें अपने मन की वृत्ति ऐसी रखनी कि – 'आदरणीय, उपादेय कर्त्तव्य तो एक मात्र जिनाज्ञा ही है।' मेरे ऐसे अहोभाग्य कब जगे कि मेरा जीवन जिनाज्ञा पालनमय बने। हमें धर्म पुरुषार्थ और मोक्ष पुरुषार्थ करने में बहुत सावधानी रखनी है क्योंकि जगत के संयोग और कर्मो का उदय ऐसा विचित्र है कि आराधना को भूला देता है।

☆ सत्य और असत्य का विवेक करने की शक्ति से रहित आत्मा सम्यग्दर्शन को प्राप्त नहीं कर सकती।

☆ बुद्धि का दुरुपयोग करने वाला और घमंड करने वाला अंत में बुद्धि को खो कर स्व रक्षण का भान भूल जाता है।

☆ बाह्य परिग्रह की वृत्ति का त्याग अनंतबार किया किन्तु आभ्यन्तर परिग्रह की वृत्ति का त्याग दुर्लभ है।

☆ मिश्री का मधुर स्वाद अनुभव करना हो तो पहले कडवे, खारे और तुच्छ स्वादों का त्याग करना पड़ता है उसी प्रकार संयम चारित्र के मीठे और मधुर स्वाद का रस चखना हो तो संसार रूप कडवे खारे और तुच्छ स्वाद का त्याग करना ही पडेगा।

☆ कुदेवों को देव, कुगुरुओं को गुरु और कुधर्म को धर्म मान लेने से आत्मा का हित तो नहीं होता किन्तु बड़ा ही अहित होता है।

☆ हे मुनि! तू तथाकथित श्रावकों के कहने के अनुसार मत कर, शास्त्र के विरुद्ध कथन और आचरण नहीं हो इसके लिए पूरा जागृत रह। शास्त्र बाह्य प्रवृत्ति की आधुनिक हवा तुझे जरासी भी नहीं लगे इसका तू बराबर ध्यान रखना।

☆ **प्रतिज्ञा ले अने लीधा पछी, ते पालनारा कोक छे,**
प्रतिज्ञा लई अने पाले नहि तो जिंदगीअे फोक छे,
थाय क्रोड कटका शरीर ना, संकट थी कंपु नहि,
छे प्राण दीपक देहमां मम धर्म ने मुकु नहि॥

☆ जब तक एक भी पदार्थ या व्यक्ति पर स्पृहा (ममत्व) है तब तक संसार है।

☆ यदि तुम्हारा पापोदय सहायक नहीं बनता है तो दुनिया की कोई भी ताकत नहीं कि जो तुम्हारा बुरा कर सके।

☆ सुसाधु और सुश्रावक आगमानुसार सुसंगठन और एकता अवश्य चाहते हैं परन्तु यदि एकता की बात में सम्मिलित होने से अपनी आत्मा का और अपने आश्रितों का अकल्याण होता हो तो ऐसी एकता को वे कभी भी स्वीकार नहीं करते हैं।

☆ अरे! देश के लिए भी स्वाभिमानी लोग हंसते हंसते अपने बलिदान दे देते हैं तो क्या हम संयम के लिए थोड़ा बहुत कष्ट भी सहन नहीं कर सकते?

☆ उपकार के नाम पर, मानव सेवा के नाम पर, आचार को ढीला बनाने की बात तो आचार पालन से घबराये हुए शिथिलाचारी करते हैं अथवा अज्ञानी लोग ही करते हैं।

☆ जानबूझ कर मिथ्या प्ररूपकों और अनाचारियों को वंदना करने से तो मिथ्यात्व और अनाचार का आदर होता है। इसमें पाप का समर्थन है यह स्वप्न में भी नहीं भूलना चाहिये।

☆ जो श्रावक साधुओं के शिथिलाचार, अनाचार और उत्सूत्र प्ररूपणा को अपनी आँखों के सामने देख कर, सुन कर और जान कर भी शांति का ढोंग करके आँखें मूंद लेते हैं, चुपचाप रहते हैं वे श्रावक मरे मुर्दे जैसे हैं।

☆ जो जीव सम्यग्-दर्शन गुण को प्राप्त कर लेते हैं उनके लिए पालन करने योग्य एक साधुपना ही रहता है क्योंकि सर्वथा पाप रहित जीवन साधुपने के अलावा पालन किया ही नहीं जा सकता है।

☆ साधुत्व को भूल कर धर्म की प्रभावना करने वाले घर बेच कर शादी करने वाले के समान मूर्ख गिने जाते हैं जो स्वयं धर्म को धक्का देते हैं वे धर्म की प्रभावना क्या करेंगे?

☆ हे भाई! तू साधु साध्वियों के पास जा कर आर्थिक परेशानियों का रोना रोकर उनके चारित्र का लूटेरा मत बन। यदि तेरे भाग्य (प्रारब्ध) में होगा तो किसी भी प्रकार से वह तूझे मिल कर रहेगा। यदि तेरा पुण्य

प्रबल नहीं होगा तो साधु क्या देवता भी तुझे फूटी कोड़ी देने में समर्थ नहीं है।

☆ 'बिना विरति के कल्याण नहीं' – ऐसी समझ सम्यगदृष्टि जीवों में होती है।

☆ भाव पूर्वक समिति गुप्ति का पालन, सिद्धांत का अभ्यास, उभयकाल प्रतिक्रमण और प्रतिलेखन क्रिया ये सब अनुष्ठान आत्मा के परिणामों को अधिक से अधिक विशुद्ध बनाते हैं।

☆ अरिहंत वीतराग है और वीतरागता के उपदेशक हैं। सिद्ध प्रभु भी वीतराग और सर्व कर्म से मुक्त हैं। साधु एक मात्र वीतरागता साधक है और धर्म वीतरागता का उपायभूत है। संक्षेप में वीतरागता ही एक मात्र उपादेय है।

☆ तीर्थंकर प्रभु की आज्ञा की अवगणना (अवहेलना) करने वाला साधु हो या साध्वी हो वह वास्तव में वेश मात्र से ही साधु और साध्वी है। ऐसे साधु-साध्वी वास्तव में चतुर्विध संघ में गिने ही नहीं जाते हैं। श्रावक और श्राविकाओं के लिये भी ऐसा ही समझना चाहिये।

☆ धर्म में अल्पमत या बहुमत नहीं चलता, इसमें तो मात्र शास्त्र मत ही चलता है। यह जीव को कभी भी नहीं भूलना चाहिये।

☆ उस साधु के साधुपने में धूल पड़ी है जो साधु भौतिक सुखों का त्याग करने का उपदेश देने के स्थान पर सांसारिक क्षणिक सुख प्राप्त करने का उपदेश देते हैं।

☆ जिसमें परोपकार की, मानव सेवा की भावना खूब भरी हो ऐसे जीव यदि अपने संयम और चारित्र की उपेक्षा कर के परोपकार करते हैं तो वे गुणस्थान में एकदम नीचे उतर जाते हैं।

☆ **राजी कर्ये राजी रहे, अेवोज आ संसार छे,**
खोटी खुशामत थी भर्यो, आ घोर नरकागार छे,
काया अने माया महीं जे जे फसाया छे अहीं,
ते मूढ आत्माओ तणो, उद्धार देखाये नहीं॥

☆ हमे मनोवृत्ति ऐसी रखनी चाहिये कि "आदरणीय, उपादेय कर्त्तव्य तो जिनाज्ञा ही हैं कब मेरे ऐसे अहो भाग्य जगे कि मेरा जीवन जिनाज्ञा के पालनमय बने।"

☆ हे मुनि! तू बाह्य भाव में मत गिरना अंतर दृष्टि रखना।

☆ ज्ञान में बहुत ही सुख है।

☆ सभी जीवों को आयुष्य प्रिय है, वे साता सुख के इच्छुक हैं। उनको दुःख और वध अप्रिय है, उनको जीना प्रिय है। वे जीने की इच्छा वाले हैं अतः किसी भी जीव को दुःख मत दो, उन्हें त्रास (पीड़ा) मत पहुँचाओ।

☆ अज्ञान ही दुःख का मूल है। ज्ञान में बहुत ही सुख है।

☆ अज्ञानी व्यक्ति आरंभ समारंभ से निवृत्त नहीं होता। आरंभ समारंभ उसके दुःख के लिए ही हैं।

☆ लौकिक सुख की इच्छा का त्याग ही परमार्थ सुख की प्राप्ति का उपाय है।

☆ वाचाल मनुष्य के पास में तो सच्चे सुख की गंध भी नहीं होती है।

☆ न्याय मार्ग में प्रवृत्त व्यक्ति की ही अंत में विजय होती है अतः मनुष्यों को न्याय मार्ग में ही चलना चाहिये।

☆ आत्म मस्ती नथी कांई सस्ती,
साचा साधक ना दिलमां वस्ती।
दंभ थी ते दूर दूर खसती,
जागृति विनानुं जीवन पस्ती॥

☆ जिसकी आत्मा में वीतराग की वाणी का यथार्थ परिणमन नहीं हुआ और जो आत्म-सन्मुख नहीं बना है उसे केश लोच आदि साधु प्रवृत्तियाँ निर्दय समान लगती है।

☆ भयंकर परीषह उपसर्ग सहने के लिए दीक्षित बना जाता है। खैर के अंगारों के लिए भी तैयार रहने वाला जो साधक एक नरम-गरम शब्द में ही उग्र बन जाता है तो समुद्र को पार करने के लिए तैयार व्यक्ति के गड्ढे में ही डूब मरने के समान है।

☆ जैसे अंधे व्यक्ति के लिए प्रकाश उपकारी नहीं बन सकता उसी प्रकार अनंत ज्ञानियों की वाणी भी अज्ञानी जीवों के लिए मार्ग दर्शक नहीं बन सकती है।

☆ जिसके पास अधिक कीमती रत्न है उसको बहुत अधिक जागृत रहने की आवश्यकता है, उसी प्रकार जिसके पास संयम रूपी अमूल्य रत्न रहा हुआ है उसे अधिक जागृति की आवश्यकता है।

☆ भूल का शीघ्र स्वीकार, हृदय संताप और शल्य को रोकता है।

☆ धर्म कब करोगे? मरने के बाद या मरने के पहले?

☆ काल का कोई ठिकाना नहीं, न मालूम कब आ जाय?

☆ यदि तुम परम पद-मोक्ष के शाश्वत सुख चाहते हो तो तीन लोक के उद्धारक जिन वचन पर आदर करो, जिसके द्वारा तुम सभी दु:खों का अंत कर सकोगे और तुम्हारा निर्मल यश तीन लोक में फैलेगा।

☆ हे वत्स! तू बड़ों के साथ कभी भी अविनय और उद्दंडता का व्यवहार मत करना।

☆ निर्मल यश की प्राप्ति तो उसी को होती है जिसका आचार विचार पवित्र होता है।

☆ धन से भी आत्मा अधिक मूल्यवान है अत: धन के पीछे आत्मा का बिगाड़ करना उचित नहीं है।

☆ कुछ अच्छा कार्य करके मान चाहना, कीर्ति चाहना यह कषाय की खरीदी है। आत्मा विकास का मार्ग यही है कि किये हुए सुकृत पर कषाय मत खरीदो।

☆ मानकी आकांक्षा जीव को भान भूल बनाती है।

☆ सुख ही जीव को संसार में से मोक्ष में जाने की इच्छा करने नहीं देता अत: सुख बेकार है- छोड़ने योग्य है। जो साधु भक्तों के भौतिक दु:खों को दूर करने की और उन्हें पौद्गलिक सुख प्राप्त कराने की प्रवृत्ति करते हैं वे जैन साधु नहीं है।

☆ तत्त्वज्ञान की आराधना करके अनंत जीवों ने भूतकाल में संसार परित्त किया, वर्तमान में बहुत से आराधक जीव संसार परित्त कर रहे हैं और भविष्य में भी अनंत जीव आराधना करके संसार परित्त करेंगे।

☆ सम्यक् श्रुतज्ञान (जिनवाणी) की विराधना करके अनंत जीवों ने भूतकाल में संसार परिभ्रमण किया,

वर्तमान में परिभ्रमण कर रहे हैं और भविष्य में भी परिभ्रमण करेंगे।

☆ आध्यात्मवाद के नाम पर सम्यक् क्रिया, सम्यक् अनुष्ठान, आगम और अहिंसा की उपेक्षा करने वाला वर्ग खडा हुआ है। जबकि दूसरी ओर धर्म के नाम पर सामाजिक राष्ट्रीय भौतिक और आस्रव वर्द्धक सांसारिक प्रवृत्तियों को ही धार्मिक प्रवृत्ति मानने वाला संसाराभिमुख दृष्टिवाला वर्ग खड़ा हुआ है दोनों ही धर्म के मर्म को भूले हुए हैं।

☆ जमानो लागे जगतने, धर्म मां जमानो न होय,
धर्ममां सिद्धान्त ते सिद्धांत, धर्म मां तो सत्य ते सत्य॥

☆ आज के लोक प्रवाह में बहने वाले कितने ही तथाकथित सुधारक ऐसा मानते हैं कि सर्व धर्म समान है किन्तु यह उनकी भूल है। अहिंसा संयम और तप रूप धर्म ही श्रेष्ठ धर्म है।

☆ अच्छे कार्यों के लिए भी धन प्राप्त करने का विधान अपने यहाँ नहीं है ऐसी प्रवृत्ति करने की अपेक्षा तो जिनेश्वर भगवान् द्वारा कथित निवृत्ति महान् है।

☆ किसी भी व्यक्ति के प्रति द्वेष या तिरस्कार की वृत्ति नहीं होनी चाहिये।

☆ धर्म वही कहलाता है जो तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा से प्रतिबद्ध हो अर्थात् तीर्थंकर भगवंतों की आज्ञानुसार हो।

☆ दोरंगी आ दुनिया महीं, रहेवुं गमतुं नथी,
कपटी जीवोनी जाल मां रमवुं होय हवे गमतुं नथी,

मारुं करी मानेल जे, मारुं जराय ना थयुं,
तेथी ज मारु आ हृदय संसार थी उठी गयुं छे।

☆ दुनिया को अच्छा दिखाने के लिए अनंती बार प्रयत्न किया किन्तु आत्मा को एक बार भी सुन्दर बनाने के लिए जीवन जी लिया तो अनंत भवों का परिभ्रमण मिट जायेगा।

☆ अनंत बार इस शरीर के लिए आत्मा को गलाया किन्तु जो शरीर आत्मा के लिये गलेगा तो वह शरीर अंतिम होगा।

☆ ज्ञानी पुरुषों ने कहने में कोई बाकी नहीं रखा किन्तु अज्ञानी जीवों ने करने का सब कुछ बाकी रखा है।

☆ जिसकी प्ररूपणा विपरीत है वह अवंदनीय है।

☆ आचार में शिथिल बने हुए सच्ची प्रभावना कर ही नहीं सकते। आचार में दृढ़ रहने वाले जो प्रभावना कर सकते हैं वह आचार में शिथिल बनने वाले नहीं कर सकते हैं।

☆ साधु होकर भी यदि कोई जिनेश्वर भगवंतों की आज्ञा में न रहे और जिनाज्ञा की अपेक्षा भी नहीं रखे तो वह साधु वस्तुतः जिनेश्वर भगवंतों का साधु नहीं कहला सकता।

☆ जो जिनेश्वर भगवंत का साधु है उसे तो चाहे कैसी भी परिस्थिति में भी जिनाज्ञा में स्थिर रहना चाहिये और उसकी दृष्टि जिनाज्ञा की तरफ ही रहनी चाहिये।

☆ मारा वगर नहीं चालशे अे व्यर्थ तुझ अभिमान छे,
बोझो उपाडी गामनो, तूं थाय कां हेरान छे?

अबजो वर्षों थी दुनिया चालती चाली रही,
ना खुरशी कोई प्रधान नी अेके दिवस खाली रही।।

☆ तूं पौद्गलिक, भौतिक या शारीरिक दुःखों को दूर करने के लिए और बाह्य सुखों को प्राप्त करने के लिए बिचारा, बापडा, दीन या रांक मत बन। सभी दुःखों को दूर करने का एक ही सच्चा मार्ग है कि मोक्ष के लक्ष्य पूर्वक शुद्ध हृदय से शुद्ध धर्म की आराधना कर।

☆ कुसाधु और कुगुरु को जानने के बाद भी जो श्रावक श्राविका उनके साथ वंदना व्यवहार करते हैं और जो अन्य साधु साध्वी उनके साथ वंदना व्यवहार आदि संभोग रखते हैं उनको कुसाधुओं के अनाचार और शिथिलाचार की अनुमोदना का महान् पाप लगता है और वंदना आदि करने वाले भी भगवान् की आज्ञा के विराधक बनते हैं।

☆ ज्यां काम चारे कोर, वडवानल भयंकर भडभडे।
ने विषय पर्वतना शिखर पर थी शिलाओ गडगडे।
सरिता विकारोनी मले ज्यां क्रोधनो वमलो रची।
संसार छे सागर भयंकर, भय कहो कोने नथी?

☆ विषय जन्य सुखों को तुम सुख मानते हो और ज्ञानीजन उसे महाभयंकर दुःख मानते हैं। यह तो जीव को फंसाने की जाल है। भौतिक सुख की लालसा से जीव मोह की जाल में फंस जाता है और परिणाम स्वरूप मर कर दुर्गति में जाता है।

☆ जाति अंध की अपेक्षा मिथ्यात्व से अंध बना हुआ मानव महा अनर्थ करके अपनी आत्मा को अत्यंत दारुण और दुःखमयी दुर्गति में गिरा देता है।

☆ जब सम्यग्ज्ञान के साथ सम्यक् क्रिया का योग होता है तब मोह राजा का आसन कंपित (चलित) होने लगता है।

☆ स्थावर या त्रस किसी भी जीव की हिंसा हो, ऐसी धार्मिक क्रिया या अनुष्ठान की तीर्थंकर प्रभु प्ररूपणा करते ही नहीं, ऐसी श्रद्धाप्ररूपणा करने वाला एक मात्र अहिंसा प्रधान शुद्ध जैन धर्म ही श्रेष्ठ है।

☆ 'गृहस्थाश्रम त्याज्य है और श्रमणत्व ग्राह्य है', ऐसी अंतर की दृढ़ श्रद्धा के बिना सम्यक्त्व रत्न प्राप्त नहीं हो सकता।

☆ मानव जीवन की सफलता हृदय को निर्मल, विशुद्ध और पवित्र बनाने में है।

☆ भविष्य के अनंतकाल तक के अनंत दुःख जिसकी आँखों के सामने घूम रहे हैं और जो यह मानता है कि इससे बचने का एक मात्र उपाय चारित्र ही है, उसे चारित्र कष्टप्रद नहीं किन्तु सुखप्रद लगता है।

☆ चारित्र के कष्ट अधिक? या मोह में फंसे रह कर नरक आदि दुर्गति के महादुःख बार-बार भोगने पडे वो कष्ट अधिक ?

☆ कर्म के वश परवशपने जीव नरकादि की घोर यातनाओं को सहन कर सकता है तो धीर वीर दृढ़ मनोबली जीव चारित्र के मामूली कष्टों को आनंद से क्यों नहीं सहन कर सकता?

☆ जो जीव सम्यग्-दर्शन गुण को प्राप्त करता है उस जीव को 'जीने योग्य एक साधुपना ही है' यह लगे बिना नहीं रहता क्योंकि सर्वथा पाप रहित जीवन साधुपने के अलावा अन्यत्र कही नहीं जीया जा सकता है।

☆ ज्ञान रूप भगवंत तणी छे, वाणी नी अमी धारा।
ज्यां वरसी त्यां विकास पाम्या अमृत नां झरणां।
जे भाख्युं भगवंते जग मां ते भाखेवे नव कोई।
परमज्ञान ने अटल सत्य ना अेमां अजवालां॥

☆ धन धान्य आदि नौ प्रकार के परिग्रह में रहे ममत्व को मन से दूर कर इनका सर्वस्व त्याग कर निवृत्ति प्राप्त करेगा तब ही तू परम सुखी होगा।

☆ मायावी कषायात्मा प्रमादी बन कर बार-बार गर्भ में आती है।

☆ आत्मा ज्ञान स्वरूप है उसके ज्ञान में स्व और पर के गुण तथा दोष सभी दिखाई देते हैं।

☆ यह तो सहज है कि जो गुणवान व्यक्ति होता है वह जितना सन्मान का पात्र होता है उतना गुणरहित व्यक्ति नहीं होता।

☆ भव्य जीवों के लिए तो शुद्ध क्रिया, भावों को शुद्ध करने का महान् निमित्त है।

☆ मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा, ये पांच प्रमाद जीव को संसार में भटकाने वाले हैं।

☆ हे जीव! तू अकार्य करने में आलसी बन। प्राणियों के वध करने में पंगु बन। दूसरों की पंचायत सुनने में बहरा बन और परस्त्री के ऊपर कुदृष्टि करने में

जन्मान्ध बन अर्थात् इन चारों बातों में आलसी, पंगु, बधिर और अंध जैसी प्रवृत्ति रख।

☆ आचार में दृढ़ रहने से जो प्रभावना हो सकती है वह आचारों की उपेक्षा करने वालों से नहीं हो सकती।

☆ आगम वचनों पर श्रद्धा करके तदनुसार आचरण करने की भावना वाला ही सम्यग्दृष्टि हो सकता है।

☆ सुगुरु और स्वधर्मी सौ योजन दूर हो तो भी उनका वास अपने हृदय में होता है जबकि कुगुरु और मिथ्याधर्मी अपने समीप हो तो भी वह अपने हृदय से बहुत दूर होता है।

☆ जो मोक्षार्थी और हलुकर्मी आत्मा है वह तो आत्मार्थी संत मुनिराजों का ही सतत समागम करेगा, उनके अंतर में क्षमा, दया, अनुकंपा, शांति, समाधि, सम्यक्त्व और अठारह पाप स्थानों से निवृत्त होने की ही भावना रमण करेगी। उनका लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति का ही होगा वे तो सर्वज्ञ कथित आगम बातें सुनने में ही लवलीन बन जायेंगे। उनकी अवस्था मानसरोवर में क्रीड़ा करते हुए राजहंस जैसी उन्नत होगी।

☆ भगवान् सुधर्म स्वामी ने जम्बूस्वामी को ज्ञान दिया.... इस ज्ञान ने जम्बूकुमार में असार संसार को त्यागने की, संयम सर्वविरति, चारित्र, मुनिपणा अंगीकार करने की तीव्र भावना जगा दी और वे आगे बढ़ कर क्षपक श्रेणी चढ़ कर केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त कर

सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो गये। क्या अपने को ऐसा ज्ञान देने वाला कोई नहीं मिला? या अभी तक उस ओर अपनी ही कमजोरी है?

☆ तत्त्व परिणति वाला ज्ञान, आत्म परिणति में परिणत होता है।

☆ हे भाई! शरीर धन घर..... आदि पर पदार्थों की परिवर्तनशील अवस्थाओं में तू रागद्वेष मत कर।

☆ दुःख रहित संपूर्ण तथा शाश्वत सुख एक मात्र सिद्ध दशा में ही रहा हुआ है।

☆ जगत् में अविश्वास पैदा करने वाले ऐसे असत्य वचनों का सर्वथा त्याग करके हित-मित-सत्य वचन बोलने का यदि तू ध्यान रखेगा तो परम सुखी हो जायेगा।

☆ क्षमा सरलता के बदले चाहे जितने तीव्र क्रोध एवं माया के दांवपेच करने पर भी यदि अशुभ कर्म का उदय हो तो आपत्ति आयेगी ही।

☆ आयु घटती पल पल, जैसे दीवेल कम होता दीप का।
ज्योति से जो लिया न काम तो प्रतीक्षा करती नहीं किसी का।
मंद, प्रचण्ड वायु के झोंके, आते अचानक ऊपर का।
फिर अफसोस रहेगा केवल जीवन है यह जगने का।

☆ जिसे सुख की परवाह नहीं, दुःख का डर नहीं, मरने का भय नहीं उसी का जीवन सार्थक है यह स्वप्न में भी भूलने योग्य नहीं है।

☆ अपना जाना तो निश्चित ही है, बंगले में सदैव रहना

ही नहीं है अतः अब कहाँ जाना है? इसका निर्णय भी अपने को ही करना है।

☆ यहाँ जो कुछ इकट्ठा किया है वह सब छोड़ के ही जाना है फिर चाहे वह जड़ हो या चेतन, तुम्हारी किसी पर भी मालिकी नहीं। जीवन भर जो धर्म क्रिया की है उसका फल तो मृत्यु के माध्यम से ही प्राप्त होता है।

☆ यदि किसी के शुभ कर्मों का उदय होगा तो उसे दुःख नहीं आयेगा और यदि अशुभ कर्मों का उदय होगा तो दुःख दूसरों के प्रयत्नों से भी दूर नहीं होगा।

☆ सामने वाले व्यक्ति से हुई भूल सुधारना मेरे हाथ में नहीं किन्तु सामने वाले व्यक्ति पर क्षमा बरसाना और उसके द्वारा हुए नुकशान को सहर्ष सहन करना तो मेरे हाथ में है।

☆ तप भाव मंगल कहलाता है उसके द्वारा बहुत सी लब्धियाँ प्राप्त होती है उन लब्धियों के प्रति भी धर्मात्मा व्यक्ति निस्पृह ही होता है।

☆ वैराग्य अर्थात् ऐसे भाव कि जिसमें संसार के सुख, धन आदि सामग्री आत्मा को सुख रूप नहीं लगती किन्तु भविष्य के लिए दुःख रूप लगती। इन सभी में मेरी आत्मा का क्या? ऐसा भय उत्पन्न होवें, उसे परिग्रह और संसार छोड़ने जैसा लगे और नहीं छोड़े तब तक उदासीन रहे।

☆ सुगंधित या दुर्गंधित पदार्थ नाक के पास हो उनकी

गंध आती हो। उस समय शुभ ऊपर राग और अशुभ ऊपर द्वेष मन से भी न हो तब तू परम सुखी होगा।

☆ धर्मी आत्मा के समागम से जो मोक्ष मार्ग सच्चा है उसके ऊपर मुमुक्षु आत्माओं को श्रद्धा प्रकट होती है और जो आत्माएं श्रद्धालु होती है उनकी श्रद्धा निर्मल बनती है।

☆ संसार के प्रति उदासीन भाव-वैराग्यभाव के बिना धर्म की शुरूआत ही नहीं होती।

☆ रुचिकर स्वादिष्ट आहार की प्राप्ति के समय और अरुचिकर नीरस आहार मिलने पर यदि तेरा मन समभाव में लीन रहा तो तू परम सुखी हो जायेगा।

☆ समाधि निपजे धर्मथी उज्ज्वल बने जीवन।
मृत्यु महोत्सव बने धन्य धन्य जीवन।
साधक जे छे संयमी रूडूं जीवे जीवन।
अभय बने मृत्यु थकी धन्य धन्य मरण॥

☆ सच्चा साधक संयम के कष्टों को सुख का सागर मानता है। वह समझता है कि ये कष्ट ही कर्मो की निर्जरा कराने वाले और अंत में मोक्ष सुख देने वाले हैं।

☆ मनुष्य जीवन का सार आत्मा का कल्याण कर लेने में ही हैं। संसारलक्षी किये जाने वाले सभी कार्य आत्मा को भटकाने वाले ही हैं।

☆ संसार के दुःखों से मुक्त होने के लिए संसार को ही

त्याग दो। स्वयं तीर्थकर भगवंतों ने यह मार्ग अपनाया है। त्याग से ही मोक्ष मिलता है।

☆ भोगों की इच्छा और लालसा ही जीव को भटकाती है। हे जीव! तुझे अगर इच्छा ही रखनी हो तो एक मात्र मोक्ष सुख की ही रख।

☆ छह काय जीवों की दया पालो और आत्मा के परम सुख का अनुभव करो। ज्यों-ज्यों दया पालन बढता जायेगा त्यों त्यों समाधि बढ़ती जायेगी।

☆ धर्मी व्यक्ति दुःख आने पर समझता है कि यह दुःख मेरे पूर्वकृत पाप का फल ही है, अतः अब जीवन में पाप कम करूँ।

☆ कष्ट रूप, क्लेश रूप और सैंकड़ो दुःखों का मूल अज्ञान है।

☆ अनुकूल और प्रतिकूल पदार्थ दृष्टि गोचर होने पर अनुकूल ऊपर प्रीति (राग) और प्रतिकूल पर द्वेष नहीं करेगा तब तू परम सुखी होगा।

☆ मुमुक्षु आत्माओं के लिए जैसे सुगुरुओं की संगति की आवश्यकता है वैसे ही कुगुरुओं का त्याग करने की भी परम आवश्यकता है।

☆ कोने खबर क्यारे धमण आ चालती अटकी जशे।
तेजस्वी लोचन नी कीकी आ हालती अटकी जशे।
थंभी जशे जिह्वा मुखे मीठा वचन उच्चारती।
खोपरी विज्ञाननी थंभी जशे विचारती।

☆ धर्म और अधर्म के अंतर को समझ कर जीवादि नव तत्त्वों को जान कर जब तू अपने आप को पहचानेगा तब तू परम सुखी होगा।

☆ शासन ताहरुं अति भलुं, जग नहि कोई तम सरखुं रे।
तिम तिम राग घणो रे वधे, जिम जिम जुगति शुं परखुं रे॥

☆ दूसरों को होने वाली पीड़ा का विचार करके जब बिना दी हुई दूसरों की वस्तु को लेने का सर्वथा त्याग करेगा तब तू परम सुखी होगा।

☆ सभी पापों को आमंत्रण देने वाले मैथुन से सर्वथा दूर रह कर ब्रह्मचर्य व्रत में संपूर्ण रूप से रत रहेगा तब तू परम सुखी होगा।

☆ मोक्ष के अभिलाषी को देवलोक और मनुष्य लोक के ऊँचे से ऊँचे सुख की भी स्पृहा नहीं होती।

☆ वस्तु के व्यक्ति मां सुख रहेतुं नथी।
सुख साचुं भर्युं आत्म खाणे।
बंधन तोडी जे दृष्टि अंतर करे।
तो निजानंद ते अचल माणे॥

☆ सर्व जीवों की संपूर्ण रूप से हिंसा का त्याग कर, परम करुणावंत बन कर सभी जीवों के प्रति मैत्री भाव को धारण करेगा तब तू परम सुखी होगा।

☆ सभी संतापों को देने वाले क्रोध और वैमनस्य का त्याग करके जब तेरा समता रूपी अमृत से सिंचन होगा तब तू परम सुखी होगा।

पूज्य महात्मा जी म. सा. के चातुर्मास

दीक्षा दिनांक ८-२-१९७३ धार (म. प्र.)

१. १९७३ जोधपुर
२. १९७४ खीचन
३. १९७५ बालेसरसत्ता
४. १९७६ बिलाडा
५. १९७७ पीपाडसिटी
६. १९७८ पाली
७. १९७९ नोखामंडी
८. १९८० मसूदा
९. १९८१ अहमदाबाद (राजस्थान उपाश्रय)
१०. १९८२ दामनगर
११. १९८३ ध्रांगध्रा
१२. १९८४ साबरमती (अहमदाबाद)

१३. १९८५ जोधपुर
१४. १९८६ बालोतरा
१५. १९८७ राजकोट
१६. १९८८ सोजतरोड़
१७. १९८९ पाली
१८. १९९० बालोतरा
१९. १९९१ जोधपुर
२०. १९९२ कांधला (उ.प्र.)
२१. १९९३ बड़ौत (उ.प्र.)
२२. १९९४ जयपुर
२३. १९९५ पाली
२४. १९९६ गढ़सिवाना
२५. १९९७ जालोर
२६. १९९८ जामनगर (रणजीतनगर) अन्तिम चातुर्मास

चातुर्मास राज्यवार

राजस्थान -	१८
गुजरात -	६
उत्तरप्रदेश -	२
कुल चातुर्मास -	२६

विचरण से पवित्र बने राज्य

१. राजस्थान २. दिल्ली
३. उत्तरप्रदेश ४. गुजरात
५. मध्यप्रदेश ६. हरियाणा

पू. महात्मा जी म. सा. के प्रवचन से.......

❖ परम् उपकारी अरिहंत भगवंतों ने जगत् जीवों को दुःखों से मुक्त कराने और शाश्वत सुख दिलाने के लिये सहज रूप से धर्मोपदेश फरमाया है।

❖ जो भाग्यशाली आत्माएं भगवान् की वाणी पर दृढ़ विश्वास करती हैं, आचरण करती हैं, वे आत्माएं परम सुख, शांति, आनंद और समाधि को प्राप्त होती है। ऐसी आत्माओं को कामभोग छोडने जैसे लगते हैं, पाप छोडने जैसे लगते हैं और धर्म प्यारा लगता है।

❖ दुःख आते हैं परन्तु उन्हें दूर करने का सच्चा उपाय क्या? जब तक पाप छोडोगे नहीं, भोग छोड़ोगे नहीं, आरंभ समारंभ छोडोगे नहीं तब तक दुःख दूर होने वाले नहीं, सच्चा सुख मिलने वाला नहीं। पाप करे नहीं तो वेदना आवे नहीं।

❖ जो भाग्यशाली आत्माएँ संयम लेती हैं भगवान् की आज्ञा अनुसार संयम का पालन करती हैं, दोष रहित चारित्र पालती हैं वे ही सिद्ध पद की प्राप्ति के योग्य बनती है।

❖ श्रावको को साधु बनने की भावना का सदैव चिंतन करना चाहिये। जब साधु बने तब सच्चे साधु बनने की भावना हो, ऐसी आत्मा में जागृति लानी चाहिये।

❖ श्रावक कुदेव, कुगुरु, कुधर्म को मानता नहीं, खोटी हां में हां मिलाता नहीं यदि कोई साधु भूल करता दिखाई दे तो हित बुद्धि से सच्ची बात कहने में डरता नहीं।

❖ श्रावक, संसार के दुःख स्वयं के अशुभ कर्मों के बिना आते नहीं ऐसी दृढ़ मान्यता वाला होता है।

❖ सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यक् चारित्र बिना संपूर्ण रूप से आत्म शुद्धि होती नहीं।

❖ जब तक भगवान् की वाणी पर विश्वास नहीं श्रद्धा नहीं तब तक सम्यग्दृष्टि आती नहीं। जिनवाणी, जिनेश्वर भगवन्तों द्वारा प्ररूपित धर्म में अटल श्रद्धा रखने वाला सम्यग्दृष्टि होता है।

❖ सम्यग्दृष्टि आत्मा संसार के किसी भी सुख में आनंद मानती नहीं, किसी भी बाह्य भाव में आनंद मानती नहीं। सम्यग्दृष्टि का एक मात्र ध्येय आत्म सिद्धि, आत्म शुद्धि और मोक्ष पद की प्राप्ति ही होता है।

❖ संसार के सुखों के लिए अरिहंत को माने, गुरु को माने, धर्म को माने वह लोकोत्तर मिथ्यात्व है। धर्म की साधना तो मोक्ष के लिये ही की जाती है। पौद्गलिक सुखों की इच्छा से धर्म नहीं किया जाता। 'धर्म करूंगा तो संसार के सुख मिलेंगे, ऐसा मान कर धर्म किया जाता है तो वह लोकोत्तर मिथ्यात्व है। संसार के सुखों के लिए साधु साध्वी को कभी बीच में नहीं लाना चाहिए। जीव अज्ञानता से लोकोत्तर मिथ्यात्व का पोषण कर रहा है।

❖ सच्चा श्रावक वही है जो अरिहंत सिद्ध के सिवाय अन्य किसी भी देव को माने नहीं, संसार के सुखों के लिए किसी प्रकार के त्याग प्रत्याख्यान लेवे नहीं। देव देवी मेरा भला करेंगे, संसार का सुख देंगे ऐसा मान कर उनकी आराधना करे नहीं, लौकिक मिथ्यात्व का पोषण करे नहीं।

❖ जो जीवों की हिंसा से दूर रहता है वही शुद्ध धर्म का आराधक बनता है।

❖ आध्यात्मिकता का मूल छह काय जीवों की दया है। इसीलिए '**अहिंसा परमो धर्म**' का सदैव चिंतन करते रहना चाहिये और सभी को आराधक बनना चाहिये।

जिननाद गुंजाकर चले गए

जन-जन के प्यारे महात्मा, जिननाद गुंजाकर चले गए।
गुरु के प्यारे शिष्य जयन्ती, जय विजय कर चले गए॥ टेर॥
अरहन्त म्हारां अंतर मा, संथारों म्हारा साथ मां।
ज्ञाता दृष्टा बनकर रहना, उपदेश था हर बात मां॥
जैसा कहते वैसा करते, दृश्य दिखाकर चले गए॥ १॥
आचारांगमय ही जीवन था, संयम धन ही प्राण था।
गुरु आज्ञा में रमण करते, जिनाज्ञा ही जिनका प्राण था॥
मृत्यु के अग्रदूत थे वो, गुरु जयन्ती चले गए॥ २॥
गुजरात का कीमती नगीना, गुजरात तारण को गया।
भव्यों को प्रतिबोध देते, बीच में कहां खो गया॥
चम्पक का कोहिनूर हीरा, चमक दिखाकर चले गए॥ ३॥
गच्छ का गुलाब था, चम्पक का कोमल फूल था।
मर जाना न दोष लगाना, उनका पक्का रूल था॥
कोमल कांत बदन के धारी, परीषह विजय कर चले गए॥ ४॥
आप जहाँ पर भी गए, वहाँ खम्मा-खम्मा हो रही।
शासन में खामी पड़ी, यहाँ आँखें सबकी रो रही॥
अगले चौमासे संघ मांग रहे, गुरु जयन्ती चले गए॥ ५॥

म्हांने चुडा रो चिंतामणी प्यारो प्यारो लागे

समरथ शासन रो सितारो, चम्पक गुरु रो शिष्य प्यारो।
लाखों आंखडल्यो रो तारो हार हिया रो लागे कि
म्हांने चुडा रो चिन्तामणी प्यारो प्यारो लागे॥ टेर॥
दुनिया रा भोगों में जाणी जनम मरण री दुविधा
ठोकर मार चल्यो संयम पर, त्यागी सारी सुविधा
भाव योग और करण सत्य से, महात्मा सघला केहवां
आत्म संवर रे शुरवीर मैं गौरव गाथा गावां
पावां दर्शन सु सुख साता आनंद उर में नहीं समाता
माता जवेर रो दुलारो मोहन गारो लागे
पिता किस्तुर भाई रो दीवलो सब सुं न्यारो लागे
म्हांने माटुंगा रो मोती प्यारो प्यारो लागे॥ १॥
कोमल काया कठिन तपस्या देख चकित मानव रह गया
कष्ट परीषह री बेला में, समता सागर में बह गया
"किं परं मरणं सिया' जिनवाणी रंग में रंग गया
वात्सलता और विशालता से जन-जन रे मन में बस गया
मन संकल्प शक्ति अति भारी, जावां बार-बार बलिहारी
जन्मयो अमावस रो पुनम सो उजिआरो लागे
म्हांने सोरठ री शिरोमणि प्यारो-प्यारो लागे॥ ३॥
आज्ञा धर्म अनाज्ञा अधर्म, धारी प्रभुजी री आण जो
नहीं लगावा दोष कदेई चाहे निकले प्राण जो
जिन शासन में गुंज रही है अद्भुत थांरी वाणजो
जिन्दा आचारंग बण आया कलियुग में सतयुग दिखलाया
थे तो भव सागर रो जाण लियो किनारो लागे
म्हाँने माटुंगा रो मोती प्यारो-प्यारो लागे॥ ४॥

प्रकाश गुरुवर थांने माने गणसोहीकर खास हो
मारवाड और सोरठ बीच में गढयो गजब गजब इतिहास हो।
बरसो सुं प्यासा में चावो चरणों वरसा वास हो।
मेहर गणेरी राखजो मांह पर कर जोडी अरदास हो
चुड़ा रो चंदा हो महात्मा, सोरठ रो सूरज हो महात्मा
जिन शासन री शान महात्मा, ज्ञानगच्छ रा गौरव महात्मा
भक्तोंरा भगवान् महात्मा, जय जय जय जयन्ती गुरुवर
जग उजिआरो लागे म्हाँने मारवाड रो महात्मा प्यारो-प्यारो लागे॥

संग्रहकर्त्ता - आर. हरखचन्द डोशी सांचौर

श्रद्धांजलि-सुमन

गुरुवर जयन्ती ने, संथारा ठाया है।
महात्मा सम जीवन है, कंचन सम प्यारा है॥ टेर॥
व्याधि से तन जकड़ा, पर मन में समाधि है।
कर्मो की दशा भारी, कैसी ये उपाधि है॥
समभावों का दर्शन, होता ये नजारा है॥ १॥
संयम के महापथ पर, पुत्री पत्नी संघ चले आये।
तपस्वी गुरुवर जी, जन-जन को मन भाये॥
अनुगमन किया जग से, करके उपकारा है॥ २॥
सुदीर्घ अवधि तक, संयम में रमण किया।
भव-भव की भटकन का अवरुद्ध भ्रमण किया॥
संयम की सौरभ से जीवन महकाया है॥ ३॥
थे सरलमना सुकोमल, गौरव तेरा छाया।
करनी आचारांग सम, जीवन था भव्य निराला॥
संथारा अपना कर, कर्मो को खपाया है॥ ४॥

✍: श्री दिलीप सिसोदिया, भीलवाड़ा

मुनि जयंतीलालजी ने नेणां निरख्या रे

(तर्ज – नेमकंवर बिन राजुल तरसे रे.. ......)

निज गुण परख्या रे, निज गुण परख्या रे।
मुनि जयंतीलालजी ने नेणां निरख्या रे, निज गुण परख्या रे.. ॥टेर॥
सौराष्ट्र देश सुशोभित जानो चुडा गांव सुखदायी रे।
उत्तम कुल में जन्म लियो मश्करिया कुल मांही रे।। १ ॥
पिता आपके किस्तूरभाई माता जवेरी बहिन सुखदाई रे।
जीण कुखे आई आप, ऊपन्यां सफल किओ अवतार रे ॥ २ ॥
यौवन वय में सुनी पूज्य श्री समरथमल जी की वाणी रे।
लियो मुनि पद धार जगत्, सपना सम जाणी रे॥ ३ ॥
कियो ज्ञान अभ्यास आप, नित इच्छुक शुद्ध क्रिया के रे।
महिमावन्त सन्त गुण आगर, पूंज दया के रे॥ ४ ॥
मगन सूत्र स्वाध्याय बीच, शुद्ध प्रभु जाप के जपीये रे।
चौथ भक्त आदि तप तन, से बहु विधी तपीया रे॥ ५ ॥
मारवाड़ मेवाड देश वली मालव मे फिर आया रे।
सौराष्ट्र और गुजरात देश में, अती धर्म ज्योत जगाई रे ॥ ६ ॥
जैनाचार्य पूज्य श्री चम्पालालजी सुयश जग में पायो रे।
धर्म प्रेम आपस में मिलजुल खूब निभायो रे॥ ७ ॥
दो हजार और पचपन साल में, चौमासा जामनगर के माही रे।
आसोज बद १२ गुरुवार के दिन अनशन कर सुरलोक सिधाया रे॥
देवकरणजी पीपाड़ा सुत चांदमल ब्यावर शहर के मांहि रे।
अल्प बुद्धि अनुसार बनाया, गुरु गुण अपरम्पारी रे॥ ९ ॥

✍: चांदमल पीपाडा, ब्यावर

जयंती जयकार

✍: श्री घीसूलाल जी पितलिया, सिरियारी

(तर्ज–धन धन श्रावक सद्गुणवान बोथरा पीर तिंवरी वाला)

जैन जगत का रतन महान, जो सबकी आँखों का तारा।
महा गुणवान जयंतीलाल, पूज्य गुरुराज सभी का प्यारा ॥टेर॥

पूरव पुनवानी सुयसाय, जल में रहे कमल की नांय।
भावना पुत्री गर्भ के मांय, छोटी वय में शील स्वीकारा ॥ १ ॥

गृहस्थ अवस्था जिनकी नीकी, नैतिकता धार्मिकता सीखी।
भौतिक रिद्धि लगती फीकी, संयम धन से प्रीति अपारा ॥ २ ॥

जिनवाणी थी नस नस बसती, सब पर अनुकंपा थी बरसती।
बहुत ही ऊँची जिनकी हस्ती, कद ठिगना रंग गौरा प्यारा ॥ ३ ॥

करते नहीं उतरती बात, कोई कैसा भी हो तात।
धन्य धन्य है जवैर मात, किस्तूर पिता धन्य कर डारा ॥ ४ ॥

वे सबके थे सब थे उनके, भेद भावना तनिक न रखते।
सबको ही वे अति प्रिय लगते निर्मल निश्छल जीवन धारा ॥ ५ ॥

क्या था वैरागी व्याख्यान, वाचना ज्ञान भरी रस खान।
भावी नां भगवान्, महिमा अनहद अपरंपारा ॥ ६ ॥

मूल उत्तर गुण जीवन कोष, रहें वे निरतिचार निर्दोष।
बिल्कुल नहीं लगाना दोष, मर जाना मंजूर है प्यारा ॥ ७ ॥

गर है बुद्धिमता चतुराई, संयम ले लो मेरे भाई।
चक्रवर्ती भी संयमी थाई, छह खंड नव निध छांडि लारा ॥ ८ ॥

चंपक गुरु के पहले चेले, संत थे सचमुच ही अलबेले।
सारे परीषह हंस कर झेले, औषधि का पूरण परिहारा ॥ ९ ॥

वाचणी सब सूत्रों की लीनी, वापस बडे चाव से दीनी।
गुरु प्रकाश जी किरपा कीनी, कीना आगम ज्ञान प्रसारा ॥ १० ॥
अंते पंडित मरणा पाया, शुद्ध मन संथारा गुरु ठाया।
जीवन में थी शांति भाया, मरण में भी शांति अणपारा ॥ ११ ॥
पर निंदा नहीं करना सुनना, आगम पद नित भनना गुनना।
उनके सब गुण धारण करना, बनना उन जैसा ही न्यारा ॥ १२ ॥
आँखों से था अमृत झरता, वचनों से भी अमृत झरता।
उनको पाकर ऐसा लगता, गृहस्थी जहर हलाहल खारा ॥ १३ ॥
घेवर वीरपुत्र गुरुराज, ऊँचे पद से दिया नवाज।
ये हैं महात्मा जी महाराज, तथा रूप था जीवन सारा ॥ १४ ॥
जंगम हीरा जयंतीलाल, परख के जौहरी हुए निहाल।
सह जोड़े ली दीक्षा कमाल, शालिभद्र ने सब कुछ वारा ॥ १५ ॥
दुनियाँ झुकती है, नमती है, श्रद्धा कहीं नहीं कमती है।
जाजम सदा काल जमती है, जयंती सम हो जमाने वाला ॥ १६ ॥

प्रवचनों में उनके हृदय के उद्गार थे।
थोड़ा और ओर दो, संसार को छोड़ दो॥

ऐ मौत आखिर तुझ से भी नादानी हुई।
फूल तूने वो चुना की गुलशन में विरानी हुई॥
विचारों में बदलाव आया तो मन कह उठा।
फूल डाली से जुदा हो गया, मगर खुशबु से नहीं।
महात्मा जी हम से विदा हो गये, मगर श्रद्धा से नहीं॥

✍ कन्हैयालाल जैन गोलेच्छा, मद्रास

पूज्य महात्मा जी म. सा.
की अमृतवाणी

(व्याख्यान एवं वाचणी में से संकलित)

१. संसार के कार्य कभी पूरे होने वाले नहीं है, अतः उनका मोह मत रखो।

२. परिणामों में जितनी जितनी निर्मलता बढ़ेगी उतनी उतनी निर्जरा में वृद्धि होगी।

३. छह काय जीवों को अपनी आत्मा के समान, अपने पुत्र के समान मानो।

४. संसार दावानल है उसमें तेरा कुछ नहीं, उसमें तेरा कोई नहीं।

५. यदि राग का त्याग करोगे तो अनुपम सुख मिलेगा।

६. मान और सन्मान ये पुण्यवानी के खेल हैं ऐसा समझो, उसमें अपने को उलझाना नहीं।

७. जहर से भरा हुआ संसार और अमृत से भरा संयम। अतः संसार में तीन काल भी सुख नहीं है।

८. चारित्र में आगे बढ़ने में जीव की सुखशीलता बाधक है।

९. सभी दुःखों का, रोगों का मूल हिंसा है।

१०. जब तक सभी पापों का त्याग करने की इच्छा नहीं होती तब तक जीव सुखी नहीं होता।

११. अंतर से किसी को अपना मानना, दुःख का कारण है।

१२. आत्मा को पवित्र बनाने के लिए ही धर्म करना है।

१३. अनंत काल से भव भ्रमण करते हुए भी जीव को सच्चा वैराग्य होता नहीं, यह कितनी विचित्रता है।
१४. इष्ट के वियोग में भी समाधि रखनी चाहिये।
१५. अकेला हो या गच्छ में अप्रतिबद्धता मत छोडो।
१६. सभी के बीच में भी अप्रतिबद्धता कायम रह सकती है।
१७. क्रोध प्रकट रूप में होता है जबकि द्वेष अप्रकट रूप में होता है।
१८. क्रोध आने का मुख्य कारण है-उल्टे विचार।
१९. भोग को छोडे उसको शांति और नहीं छोड़े उसको मौत।
२०. जब अंतर की आँखें खुलती है तब सच्चा स्वरूप समझ में आता है।
२१. पर को अपना माना, यही सबसे बड़ी भूल है।
२२. जिसे मोक्ष का लक्ष्य होता है उसे ही सम्यग्-दर्शन होता है अनंत भव शरीर के लिए बिगाड़े अब एक भव आत्मा के लिए लगाओ।
२३. प्राणों से भी अधिक भगवान् की आज्ञा को महत्त्व देना चाहिए।
२४. धर्म के लिए की जाने वाली हिंसा भी हिंसा ही है।
२५. स्त्री से मोह हो गया, समझ लो मौत हो गयी।
२६. मरने से पहले संसार से मर जाओ।
२७. जिसे संसार के सुख नहीं चाहिये उसे शांति का कोई पार नहीं।
२८. जिसके अंतर में अरिहंत की आज्ञा है, उसका मोह राजा कुछ भी नहीं कर सकता।

२९. जिन शासन में एक ही बात है–कर्मों को क्षय करो और मोक्ष में जाओ।

३०. दुनिया में संयम से बढ़ कर कोई वस्तु नहीं है।

३१. प्रशंसा, बहुत बड़ा कीचड़ है।

३२. संसार के सुखों की इच्छा छोड़ना अंतरंग धर्म है।

३३. किसी ने मेरा कुछ भी किया, कोई कैसा भी होवे, सबको मेरी क्षमा है।

३४. जिसने जैसा किया वैसा भोगे, इस प्रकार नहीं कहना अपितु दया रखना।

३५. दुनिया के किसी भी भाव में मिलो नहीं मात्र देखा करो।

३६. किसी प्रकार की इच्छा नहीं करना, परम सुखी बनने का मार्ग है।

३७. धर्म कार्य के लिए भोगों को छोड़ों तत्पश्चात् ही शीघ्र पुरुषार्थ हो सकेगा।

३८. कोई प्रशंसा करे और उसकी चाह करे तो वह राग भाव है।

३९. बस, आत्म साधना ही एक ऐसा कार्य है जो इस भव में करना है।

४०. बोलना और खाना सीख, जिसने जिह्वा को जीत लिया वह तिर गया।

४१. सभी की बात स्वीकार करना सीख, निहाल हो जायेगा।

४२. रस लोलुपी के लिए नरक तैयार है।

४३. पर को अनंत काल से देखा, अब स्व को देख।

४४. क्षमा मधुर संगीत है तो क्रोध करुण रुदन।

४५. अहिंसा अमृत है।

४६. संसार का राग नहीं छूटता, यही बहुत बड़ी भूल है।

४७. ज्यों ज्यों विषय विकार शांत होते जायेंगे, त्यों त्यों ऊँचे देवलोक प्राप्त होंगे।

४८. सुन्दर अवसर मिला है, आँख बंद होते देर नहीं लगती अतः आराधना कर लो।

४९. जिनाज्ञा के छत्र के नीचे शिथिलता का कोई पार नहीं।

५०. जो मोक्ष के मार्ग पर चलता है वह सुखी, शेष सभी दुःखी।

५१. संसार से मुख फेरा तो समझो शांति सुख का समुद्र मिला।

५२. जगत् के सर्व जीवों की रक्षा के लिए यह जिनशासन बना है।

५३. कंचन और कामिनी ये दो तलवार है।

५४. एक घंटा क्या? एक समय भी संसार के लिए रखने योग्य नहीं।

५५. मान गया यानी मृदुता प्रकटी, किसी को तुच्छ या हीन मत समझो।

५६. दूसरे चाहे कुछ भी कहे सहन कर लेना किन्तु दूसरों को कड़वे वचन नहीं कहना।

५७. चाहे दुःखी भी क्यों न होना पड़े किन्तु सरलता का त्याग नहीं करना क्योंकि सरलता में ही धर्म टिकता है।

५८. दुःख के पहाड़ टूट पड़े फिर भी मेरे परिणाम ऊँचे-नीचे नहीं हो।

५९. संसार के सुख अच्छे लगते हैं, यही दुःख का कारण है।

६०. मोक्ष के अलावा कोई इच्छा ही नहीं होनी चाहिये।

६१. बहुत बोलना एक अवगुण है।

६२. इच्छा, लोभ का सूक्ष्म अंश है।

६३. दुःख में भी अच्छे भाव, सुख का सागर है।

६४. सुख का लोभ छोड़ने योग्य है, जो छोड़ता है उसे महालाभ होता है।

६५. जब जीव संसार के लिए मर जाता है तब उसे मोक्ष मिलता है।

६६. संयम को स्वीकार किये बिना सभी कर्मों से मुक्ति होने वाली नहीं है।

६७. सच्चा श्रावक, साधु के आचार का भी जानकार होता है।

६८. जिन्दा मुर्दा बन जाना, संसार के लिए मर जावे तो कल्याण हो जाय।

६९. खोटे (बुरे) कार्य कर कर के मरने का नाम संसार है।

७०. मैल, साधु का गहना (आभूषण) है।

७१. साधु के मलीन वस्त्रों से घृणा (दुर्गुछा) नहीं करनी चाहिये।

७२. पापी जीवों के लिए भी आँखों से, हृदय से और वाणी से अमृत बरसाओ।

७३. भगवान् के उपदेश का सार है - किसी पर राग नहीं, किसी पर द्वेष नहीं।

७४. ज्ञानी जीव क्षणिक सुखों में आसक्त नहीं होते, सुखों के लिए पाप नहीं करते।

७५. स्वयं के दोषों को देखने, शुद्धि करने का पुरुषार्थ करना चाहिये।

७६. जिसमें धीरता-वीरता-गंभीरता और बुद्धिमत्ता है, वह संसार छोड़ देता है।

७७. संसार अच्छा लगता है, यही तेरा रोग है।

७८. श्रद्धा के बिना दृढ़ता नहीं आती। अंतर की श्रद्धा व्यवहार में दृढ़ता लाती है।

७९. जब अंतर से संसार अच्छा नहीं लगता, तब समकित प्राप्त होती है।

८०. छह काय जीवों की दया पालना, सच्चा यज्ञ है।

८१. किसी को दुःख हो ऐसे वचन बोलना भी हिंसा है।

८२. मोह से तृष्णा और तृष्णा से मोह की उत्पत्ति होती है।

८३. ब्रह्मचर्य शांति का पाठ है।

८४. सदैव भगवान् की आज्ञा का विचार करो।

८५. मन में किसी के भी प्रति गांठ नहीं रखनी अन्यथा मोक्ष नहीं होगा।

८६. अमुक ऐसा है और अमुक वैसा है, इस प्रकार नहीं कहना चाहिए।

८७. संसार के सुख में हर्षित नहीं होना, सुख को छोड़ने की कला यहीं सीख लो, आत्मा को पवित्र बनाने का लक्ष्य रखो।

८८. संसार के कार्यों को अच्छा मानना भी कर्म बंध का कारण है। संसार के कार्यो को बुरा माने तो कर्म निर्जरा होती है।

८९. शरीर पर जब तक मैल है तब तक निर्जरा का मीटर चालू है मैल उतरा कि मीटर बंद।

९०. मेरी आत्मा-साधना के अलावा मेरा किसी के साथ कोई संबंध नहीं, किसी से कुछ लेना देना नहीं।

९१. भगवान् के मार्ग पर शंका रहितता, संतोष, विषय भोगों का त्याग, मारणांतिक कष्ट को भी सहन करना, ये चार सुख शय्या है जो मोक्ष की सुख शय्या कहलाती है।

९२. अप्रतिबद्ध बनना, किसी भी व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति आदि में लगाव (राग) नहीं रखना, द्रव्य क्षेत्र, काल भाव का प्रतिबद्धपना नहीं रखना।

९३. किसी भी प्रकार की इच्छा लोभ है। ममत्व भाव भी लोभ है।

९४. अज्ञानी जीव भोग को महासुख का कारण मानते हैं जब कि भगवान् उसे महादुःख का कारण कहते हैं।

९५. जीव अनादिकाल से शरीर का ही लक्ष्य रख रहता है। इस दृष्टि को बदलना है-आत्म दृष्टि करना है।

९६. जब तक सुकोमलता का त्याग नहीं किया जाता तब तक सच्चा सुख का अनुभव नहीं होता।

९७. अज्ञानी जीव तुझ पर राग करेंगे किन्तु तुझे पिघलना नहीं, तुझे अपने (स्व) में रहना इसके लिए पहले कामभोग छोड़ने पड़ेंगे। कामभोगों को श्लेष्म के समान मानना नहीं तो मक्खी के समान फंस कर तू मर जायेगा अतः एक बार साहस कर कामभोगों का त्याग कर दे।

९८. दूसरों को तिराने के लिए खुद का बिगाडना, यह

तीर्थंकरों का मार्ग नहीं है। स्वयं सुखी बनना और दूसरों को सुखी बनाने का मार्ग तीर्थंकरों का मार्ग है।

९९. कोई तेरे से स्नेह (राग) करे पर तुझे स्नेह नहीं करना। सभी के साथ आत्मीयभाव, मैत्री भाव आदि रखना किन्तु राग भाव नहीं रखना। सभी जीव सुखी हो, सभी का कल्याण हो ऐसे भाव रखने चाहिये।

१००. यदि कोई स्त्री तुझे अपनी ओर आकर्षित करना चाहे तो उसे राक्षसणी समझ। उससे सावधान बन जा। तू जरा भी विचलित हुआ कि तेरा संयम, ज्ञान, ध्यान सभी लूट जायेगा। दुःख का कारण स्त्री का मोह ही है।

१०१. सावधान बन जाना। तुझे कोई लुभा न ले, इसका खास ध्यान रखना। स्त्री चारित्र तुझे मालूम नहीं अतः संभल कर रहना।

१०२. जैसे राक्षसीणी मनुष्य को पकड कर उसका खून पीकर फैंक देती है उसी प्रकार तुझ से आसक्त स्त्री तेरे संयम, ज्ञान, ध्यान, रूपी खून को पीकर तुझे फैंक देगी। अतः सावधान रहना, उसमें फंसना नहीं उससे दूर ही रहना।

१०३. जगत् के पापी, दुःखी मोह से हारे हुए जीव किसकी शरण लेंगे? ऐसा विचार कर उन पर करूँणा रखना।

१०४. किसी को दुःख हो ऐसा वचन नहीं कहना, कोई अपने को दुःख हो ऐसा वचन कहे तो स्वीकार कर लेना।

१०५. स्त्री के सग में रहने वाले को तीन काल में भी शांति

नहीं, उसे कभी भी समाधि का अनुभव नहीं हो सकता है।

१०६. जिसकी भावना सच्ची है उसकी सिद्धि अवश्य होती है क्योंकि सत्य सिद्ध करने की शक्ति उसमें आ जाती है।

१०७. पग पग पर मोह व्यक्ति के पीछे पड़ा हुआ है, थोड़ा सा भी भगवान् की आज्ञा भूला कि गिरा, मोह उसे हरा देता है। क्रोध आदि कषाय राग-द्वेष आदि करा देते हैं, मिथ्यात्व का पाठ पढ़ा देते हैं।

१०८. सुख में सावधान रहना चाहिये, जहाँ अधिक प्रशंसा, अधिक भक्ति आदि होती है वहाँ विशेष सावधानी की आवश्यकता है।

१०९. वैयावृत्य करने वाले को निन्दा भी सहन करनी पड़ती है फिर भी अग्लान भाव से सेवा करनी चाहिये। इसके लिए स्वाध्याय आदि भी छोड़ना पडे तो छोड़ देना। बदले में निन्दा मिले तो भी समभाव से सहन करनी चाहिये।

११०. वैयावृत्य करके प्रशंसा की चाह नहीं रखनी चाहिये। बहुत सेवा करते हुए भी किसी को नहीं कहना और जाहिरात (प्रचार) नहीं करना चाहिये।

१११. लोगों की प्रशंसा को अच्छा नहीं मानना। वह बहिर्भाव है। उसमें प्रसन्न नहीं होना, प्रशंसा की इच्छा नहीं करना। जो सम्यक्त्वी होते हैं वे लोकैषणा की इच्छा, परवाह नहीं करते हैं।

११२. चाहे जैसा दोष लगाने वाले पर भी करुणा रखना,

कोमल बनना। अपराध करने वाले के प्रति भी करुणा-कोमलता रखना।

११३. गच्छ छोड़ कर जाने वाले के प्रति भी वह सुखी हो, ऐसी भावना रखना, मृदु बनना।

११४. धीर-वीर-गंभीर पुरुष इस मार्ग पर चलते हैं। यहाँ कायर का काम नहीं । संयम का सुख अवर्णनीय है।

११५. जितना मोह कम, उतना देवलोक ऊँचा, यहाँ अनासक्ति हो तो देवलोक में भी अनासक्ति से रह सकता है।

११६. संयम लेने के बाद समाधान वृत्ति नहीं होवें तो नरक जैसे दुःख का अनुभव होता है। अगर संयम की प्रवृत्ति में अरति (अरुचि) होती है तो नरक के दुःखों जैसा अनुभव होता है।

११७. तेरी शांति दूसरों के हाथ में नहीं, तेरी शांति तेरे पास ही है। दुनिया की कोई ताकत नहीं कि तेरी शांति को भंग कर सके।

११८. विनय, जिनशासन का मूल है। जिसमें विनय नहीं उसमें संयम नहीं, धर्म नहीं, कुछ भी नहीं। विनय से ही संयम और तप है। बिना विनय के तप भी नहीं।

११९. जो अरिहंत की आज्ञा का छत्र निकाल देता है, वो दुःखी-दुःखी हो जाता है।

१२०. दुनिया में ऊथल पुथल होवे तो भी मुझे क्या? मैं तो दुनिया से मर गया हूँ। मेरा संबंध तो सिद्ध के साथ में है, दुनिया के साथ नहीं।

१२१. यदि कोई व्यक्ति बुराई का त्याग नहीं करे तो भी व्यक्ति से द्वेष नहीं करना, उसके प्रति जरा भी

दुर्भाव नहीं रखना, उसका भी कल्याण हो, ऐसी भावना भाना।

१२२. अच्छे भाव रख और समभाव से सहन कर। दुःख के डूंगर टूट पडे तो भी ऊँचे नीचे परिणाम नहीं। यह कला आ गयी तो भगवान् बन गये।

१२३. दूसरों को समाधि देने की भावना हो तो उसे समाधि मिलती है। जैसी भावना होती है, वैसे पुण्य बंधते हैं और वैसी ही सिद्धि मिलती है।

१२४. मोह राजा का श्रेष्ठ हथियार स्त्री है। निमित्त कुछ नहीं कर सकता इस प्रकार अंधविश्वास में मत रहना और स्त्री से सावधान रहना।

१२५. मोहनीय कर्म का जबरदस्त उदय और तथाप्रकार के निमित्तों से साधक के विचारों में जबरदस्त उथल पुथल हो जाती है। ऐसे प्रसंगों में साधक को विगय रहित आहार करना चाहिये। भूखा रहना चाहिये। परीषह सहन करना, आतापना लेनी और वह स्थान छोड़ देना फिर भी विचार शुद्ध नहीं होवें तो आहार का भी त्याग कर देना चाहिये।

१२६. वंदना एक ऐसी गोली है कि जिससे क्रोध आदि कषाय तथा सभी विषय नाश हो जाते हैं।

१२७. क्रोध तो क्या, शत्रु के प्रति मन में भी द्वेष नहीं होना चाहिये।

१२८. क्षमा आदि गुण जिसमें हो उसके गुणग्राम करने से क्रोध आदि मोहनीय कर्म की निर्जरा होती है और अपने में क्षमा आदि गुण आते हैं, उनका विकास

होता है। इसी प्रकार अन्य गुणों के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

१२९. जो जो प्रसंग बनते हैं वे मेरे लिए लाभकारी हैं ऐसा माने उसे महालाभ-आनंद-प्रसन्नता। अपमान, तिरस्कार होने पर भी प्रसन्न रहे तो उसके लाभ का पार नहीं।

१३०. भूतकाल में नरक के अनंत दुःखों की वेदना सहन की है। उसकी तुलना में वर्तमान में संयम मार्ग के-धर्ममार्ग के दुःख अल्प और थोड़े काल के हैं।

१३१. कामभोग तुच्छ हैं, उनमें मन को नहीं जाने दे। भोगों के लिए धर्म को छोड़े उन अज्ञानी जीवों को भगवान् अनार्य कहते हैं।

१३२. संसार के सुख विष मिश्रित खीर के समान है, जिसमें जीव पुण्य का क्षय कर पाप बांधते हैं।

१३३. मनुष्य भव को प्राप्त करने में जीव ने जो दुःख सहन किये हैं उसके अनंतवें भाग के दुःख भी संयम में सहन नहीं करने पड़ते।

१३४. वर्तमान के भौतिक सुख शिकारी के दाने जैसे हैं। जिसमें भोले पक्षी फंस जाते हैं। उसी प्रकार बेचारा भोला जीव सुखों में फंस कर दुर्गति को प्राप्त हो जाता है।

१३५. दुःख-तकलीफ-प्रतिकूलता आये तो महासुख का कारण समझना और समभाव से सहन करना-किसी प्रकार की दलील फरियाद नहीं करना।

१३६. दुःख में भी मन को राजी रखना, ये दुःख कर्म के उदय से ही आये हैं, इस बात को याद रखना।

१५०. मैं मरूँ तो भले ही मरूँ किन्तु अन्य कोई जीव मेरे लिए नहीं मरना चाहिये। ऐसी भावना साधु को रखनी चाहिये।

१५१. सच्चे वैरागी को संसार के काम साक्षात् नरक जैसे, मौत जैसे, मूढ जैसे, खोटे से खोटे पाप के खजाने जैसे लगते हैं।

१५२. संसार के सुखों की तीव्र अभिलाषा वाले को ऐसे पाप कर्म बंधते हैं कि भविष्य में उसे इस प्रकार के सुख नहीं मिलते।

१५३. एक भव की हार तो अनंत भव की हार, एक भव की जीत तो अनंत भव की जीत, बात को सीधा लिया तो अनंतकाल तक सुख मिलेगा।

१५४. दुनिया में मेरा कोई है ही नहीं, इतना समझ में आ जाय तो शांति ही शांति है और सारा बोझ उतर जाता है। अतः ऐसी भावना भानी चाहिये।

१५५. चाहे जैसे आरोप आये तो भी साधक समता रखे, मुझे तो निर्जरा ही निर्जरा, मुझे कोई कड़वा बोले तो मुझे महालाभ, आचारवंत साधु ऐसा होता है।

१५६. साधु को दुःख आवे तो प्रसन्नता झलकती है, अरति नहीं होती, गुणों की वृद्धि होती ही जाती है। आत्मा का तेज खिलता ही जाता है।

१५७. जगत के सर्व जीवों के प्रति अमृत बरसाना किसी के भी प्रति जरा भी द्वेष नहीं। सभी के प्रति वात्सल्य भाव रखना। जो धर्म नहीं करता हो उसके प्रति भी वात्सल्य भाव।

१५८. मेरे जीवन की अपेक्षा मेरे भगवान् की आज्ञा के पालन की कीमत अधिक है, ऐसी भावना रखनी चाहिये।

१५९. वैराग्य भाव के साथ दीक्षा लेने के बाद भी हीनता आये तो जीव संयम से भ्रष्ट हो जाता है वह कायर गिना जाता है। एक अवगुण पतन का कारण बनता है।

१६०. संसार से, भोगों से ऊपर उठ जाओ, पवित्र बन जाओ। पांच इन्द्रियों के विषय में सुख नहीं अतः पीछे हट जाओ। ज्ञान में, समझ में, आत्मा में सुख है।

१६१. सभी मेरा ध्यान रखे, सभी मेरी माने, ऐसी भावना नहीं करनी। जैसे कर्म बांधे होंगे वैसा ही मेरा ध्यान रखने में आयेगा और उदय भाव के अनुसार मिलेगा।

१६२. सुख-शांति-समाधि-आनंद-प्रसन्नता का सागर संयम में है। संयम में देवलोक से भी अधिक सुख का अनुभव होता है।

१६३. उदयभाव द्वारा जो आवे उसे स्वीकार करना। ऐसा ही होना चाहिये इस प्रकार अपेक्षा नहीं रखनी चाहिये।

१६४. जिस प्रकार होता है, जो होता है, जितना होता है वह चलेगा। कर्मानुसार ही मिलने वाला है फिर इच्छा-लोभ किस लिए रखना? इच्छा-लोभ रखने से व्यर्थ ही कर्म बंधन होता है।

१६५. 'जैसा है वैसा है' इसमें अच्छा बुरा न करना। अच्छे खराब भाव न करना। भगवान् भी देखते हैं। वे जानते हैं कि यह अच्छा है या खराब है किन्तु उसमें राग द्वेष नहीं करते। अपने को भी वैसा ही विचार

करना। मात्र देखते रहना उसमें सम्मिलित नहीं होने से महान् कर्म निर्जरा होती है महान् लाभ होता है।

१६६. आत्मा में दया का खजाना भर कर रखो। सभी पर दया रखना सीखो। पापी जीवों के प्रति भी दया भाव रखने में अनंत हि़त है।

१६७. चाहे जैसी परिस्थिति हो मुझे कोई दलील नहीं, क़ोई फरियाद नहीं, फिर शांति ही शांति।

१६८. तीर्थंकरों की वाणी में अमृत झरता है, रत्न बरसते हैं। ऐसी तीर्थकर की वाणी को छोड़ कर बेचारे अज्ञानी जीव विकथा में रचे रहते हैं।

१६९. एक ही काम करने का है जागृत हो कर मोह दशा दूर करना। मेरी आत्मा की विशुद्धि कैसे हो? इसकी सतत जागृति रखनी है।

१७०. कामभोग अनर्थ की खान है। उसे छोड़ने से सुखी होगे। उसमें मेरु जितना दुःख और थोड़ा सा सुख। बहुत काल का दुःख और क्षण मात्र का सुख।

१७१. चाहे कैसे भी प्रसंगों में नाराज नहीं होना वो अरति नाम का १६ वां पाप है, शांति में रहना।

१७२. किसी के दोष देख कर उन दोषों को जान कर, ये दोष मेरे में नहीं आवे, इसकी सावधानी रखना परन्तु दूसरों के दोष को देखकर उनकी निन्दा न करना, उसे नीचा नहीं दिखाना।

१७३. सम्पूर्ण जगत मेरे उपकारियों से भरा हुआ है। प्रतिकूलता देने वाले विशेष उपकारी है क्योंकि वे मुझे कर्म निर्जरा में सहायभूत है।

अब हमें क्या करना है?

स्व. पूज्य महात्मा जी म. सा. के जीवन का संक्षिप्त में हमने दिग्दर्शन किया। उनमें रहे हुए अनेक गुणों और विशेषताओं में से थोड़े से गुणों और अमुक विशेषताओं को हमने देखा। अब हमें अपने जीवन में क्या करना है? अपने सामने वे एक आदर्श रख गये हैं और आदर्श हमेशा प्रेरणा लेने के लिए ही होता हैं फिर भले ही वह लौकिक क्षेत्र हो या लोकोत्तर क्षेत्र। हमें उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर अपने जीवन को भी ऊर्ध्वगामी बनाना है।

पूज्य महात्मा जी म. सा. का आयुष्य ७३ वर्ष का था और जामनगर (रणजीतनगर) चातुर्मास में ७३ दिवस व्यतीत करने के बाद वे काल धर्म को प्राप्त हुए अतः उनके गुणों और आदर्श जीवन के आधार पर ७३ संकल्प तैयार किये गये हैं। उनमें से हम अधिक से अधिक संकल्प ग्रहण करें, अपने जीवन में उतारे और अपनी आत्मा को विशुद्ध बनाएं तब ही पूज्य महात्मा जी म. सा. को सच्ची श्रद्धांजलि दी जा सकेगी और प्रकाशक महोदय का इस प्रकाशन का हेतु सफल हो सकेगा–

१. जिनेश्वर भगवंतों तथा उनकी आज्ञा में विचरण करने वाले पूज्य संत सतियों की आज्ञा का विनयपूर्वक पालन करूँगा।
२. नित्य पूज्य संत सतियों के दर्शन करूँगा, उनकी व्याख्यान वाचणी स्वाध्याय आदि का लाभ लूँगा, उन्हें भाव

पूर्वक आहार पानी आदि बहराऊँगा, उनके साथ विहार में जाऊँगा।

३. उपकारी माता-पिता तथा बड़े बुजुर्गों का सम्मान करूँगा। उनकी आज्ञा का पालन करूँगा, उनके सामने नहीं बोलूँगा और उन्हें दुःख हो, ऐसा कोई भी कार्य नहीं करूँगा।

४. श्री संघ, संप्रदाय, गच्छ, धार्मिक संस्था आदि की मिंटिंग में कोई बात कहनी होगी तो विनयपूर्वक कहूँगा। उद्दंडता एवं झगडा नहीं करूँगा।

५. जिनेश्वर मार्ग से विपरीत प्ररूपणा होती होगी वहाँ दृढ़ता पूर्वक, निडरता पूर्वक और विनयपूर्वक शांति से सत्य धर्म की प्ररूपणा करूँगा तथा उनकी आगम विरुद्ध प्रवृत्तियों में सहयोगी नहीं बनूँगा।

६. अपने से छोटों के साथ, अपने आश्रितों के साथ अपनी संतानों या विद्यार्थियों के साथ मृदु एवं सौजन्यता पूर्वक व्यवहार करूँगा।

७. जिनेश्वर भगवंतों की आज्ञा का पालन करते हुए संयमी जीवन के लक्ष्य के साथ आदर्श श्रावकपना पालूँगा। दृढ़धर्मी प्रियधर्मी श्रावक (श्राविका) बनूँगा।

८. जिनेश्वर भगवान् की आज्ञा का पालन करते हुए मृत्यु भी आ जाय तो भी हंसते हुए स्वीकार कर सच्चा आराधक बनूंगा।

९. जिनेश्वर भगवंतों की आज्ञा को हमेशा साथ रखूँगा। किसी भी कार्य को करते हुए यह सतत जागृति रखूँगा

१४. नियमित रूप से आगम वाचन करूँगा [illegible] का जानकार बनूंगा।

१५. नियमित चौविहार करूँगा।

१६. ब्रह्मचर्य का पालन करते करते अखंड [illegible] बनूंगा।

१७. अपने लिए कोई मन में दुर्भाव रखे, ईर्ष्या करे, द्वेष रखे तो भी मैं उस पर ध्यान नहीं दूँगा। विशाल हृदय रख कर क्षमा कर दूँगा।

१८. कोई मुझे कठोर शब्द कहे, निंदा करे, अपमान करे तो भी मैं समभाव से सहन कर लूँगा।

१९. शरीर में रोग आने पर आर्त्तध्यान नहीं करता हुआ कर्मो का उदय समझ कर उसे समभाव से सहन करूँगा।

२०. छोटी-छोटी और सामान्य वीमारियों में डॉक्टर के पास नहीं दौड़ूँगा। विदेशी दवाओं जहाँ तक हो सके वर्जन करूँगा। कोडलीवर ऑइल तथा उसकी जैसी हिंसक और प्राणीज दवाओं का उपयोग नहीं करूँगा।

२१. प्रोटीन, विटामिन और शक्ति के नाम पर अंडा या अंडे से निर्मित दवाइयों के लिए डॉक्टर सलाह दे, तो भी दर्द सहन कर लूंगा किन्तु उनका उपयोग नहीं करूँगा।

२२. पंखा, एयरकंडीशन, हीटर, स्नान आदि के सर्वथा त्याग का लक्ष्य रखते हुए इनके उपयोग में कमी करता रहूँगा।

२३. संसार के प्रत्येक कार्य करते हुए-'इसमें मेरी आत्मा का क्या?' यह सतत स्मृति में रखूँगा।

२४. मनुष्य जन्म, आत्म विशुद्धि और आत्मगुण विकास के लिए ही मिला है, यह कभी भी नहीं भूलूँगा।

२५. मेरी आत्मा पाप कर्मो से भारी नहीं बन जाय, इसके लिए सदैव जागृति रखूँगा।

२६. संसार के प्रति सदैव निर्वेद भाव रखूँगा और मोक्ष के लिए ही धर्म आराधना करूँगा।

२७. वीतराग का मार्ग एकांत मोक्ष की आराधना के लिए ही है। अतः किसी भी धर्म आराधना में भौतिक सुख की अपेक्षा नही रखूंगा। एकांत कर्म निर्जरा का ही लक्ष्य रखूंगा।

प्रवृत्तियों से दूर रहेंगे तथा ऐसी कोई भी प्रवृत्ति को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहयोग या प्रोत्साहन नहीं देंगे।

३६. बड़ी तपस्याएं, मान-सम्मान-पूजा-प्रतिष्ठा-वाहवाही यश कीर्ति प्रभावना आदि के लिए नहीं करते हुए एकान्त कर्मनिर्जरा के लक्ष्य से ही करेंगे।

३७. बड़ी तपस्याओं के पारणा प्रसंगों पर फोटो-वीडियो-मूवी-शोभायात्रा या बहुमान प्रभावना आदि आरम्भ समारम्भ और परिग्रह वर्धक प्रवृत्तियाँ नहीं करेंगे और न ही ऐसी प्रवृत्तियों में भाग लेंगे।

३८. पूज्य साधु साध्वियों के मलिन वस्त्र देख कर उनसे घृणा नहीं करूँगा।

३९. आधाकर्मी या असूझता आहार पानी आदि नहीं बहराऊँगा।

४०. सूझता और निर्दोष आहार पानी आदि भी एकांत धर्म बुद्धि से ही बहराऊँगा।

४१. जगत् के सभी जीवों के प्रति करुणा भाव रखूँगा।

४२. सभी जीव सुखी हों, सभी का कल्याण हों, ऐसी भावना रखूँगा।

४३. जगत् के सभी जीवों के प्रति आँख में से, हृदय में से और वाणी में से अमृत बरसाऊँगा।

४४. किसी के भी दोष नहीं देखूँगा, किसी की निंदा या अवर्णवाद नहीं करूँगा।

४५. सभी जीवों में रहे हुए गुणों को ही देखूँगा। सामने

वाले व्यक्ति के गुणों को देख कर उनका गुणानुवाद करूँगा, गुणों को देख कर प्रसन्न होऊँगा और उनकी प्रशंसा करूँगा।

४६. स्वयं के छोटे छोटे दोषों को भी बहुत बड़ा गिन कर उन्हें दूर करने की कोशिश करूँगा। जबकि अन्य के छोटे-छोटे गुणों को भी बहुत बड़ा मानकर उनका अन्तःकरण से गुणानुवाद करूँगा।

४७. कदाचित् किसी में कहीं कोई दोष शिथिलता देखने को मिले तो भी हित बुद्धि से दूर करने हेतु उनका ध्यान आकर्षित करूँगा किन्तु उनका अवर्णवाद-अपमान नहीं करूँगा।

४८. जगत् के सभी जीवों के प्रति आत्मीयता पूर्वक व्यवहार रखूँगा। किसी के साथ कभी किसी प्रकार का वैरभाव नहीं रखूँगा ?

४९. संप्रदायवाद नहीं रखूँगा। भगवान् की आज्ञा में विचरने वाले सभी पूज्य संत सतियों के प्रति पूज्य भाव-अहोभाव बहुमान के भाव रखूँगा भले ही वे किसी भी संप्रदाय के क्यों न हो ?

५०. मेरी संप्रदाय के साधु साध्वी ही अच्छे आचार का पालन करते हैं बाकी सभी शिथिलाचारी-ऐसे भाव नहीं रखूँगा। जहाँ जिनाज्ञा का पालन है वहाँ मेरी वंदना, ऐसे भाव रखूँगा।

५१. संप्रदायवाद के कारण चतुर्विध संघ में क्लेशमय वातावरण न बन जाय, इसकी सतत जागृति रखूँगा।

ऐसे प्रश्नों को विवेक पूर्वक और समाधानकारी रीति से हल करने की कोशिश करूँगा, कहीं भी कट्टरता नहीं रखूँगा।

५२. जीवन निष्कपट बनाऊँगा। सभी के साथ सरलता पूर्वक व्यवहार करूँगा।

५३. व्यावहारिक जीवन में भी सरलता के गुण को विकसित करूँगा। ग्राहक को ठगूंगा नहीं।

५४. व्यवहार में-धंधे में नीतिवान् प्रामाणिक बनूँगा। किसी के साथ अन्याय नहीं करूँगा।

५५. किसी के साथ विश्वासघात या कपटता पूर्वक व्यवहार नहीं करूँगा।

५६. मैं कहता हूँ या जैसा मैं करता हूँ वैसा ही सभी करें, वैसा ही सभी को करना चाहिये, ऐसी भावना नहीं रखते हुए सामने वाले की इच्छा-भावना को महत्त्व दूँगा। उसके कहे अनुसार करूँगा।

५७. 'मेरी कोई इच्छा ही नहीं' इस भावना का विकास करूँगा।

५८. क्लेशमय वातावरण बन जाता हो, ऐसा लगे तो स्वयं की इच्छा का संपूर्ण त्याग करके वातावरण को सुमेल-सुंदर बनाने का प्रयत्न करूँगा।

५९. स्वयं को अन्याय होता लगता हो तो भी उसे गौण करके वातावरण को हलका बनाने का सदैव प्रयत्न करूँगा।

६०. किसी के भी साथ मन दुःख हुआ हो तो शीघ्र सामने जा कर क्षमा मांग लूंगा।

६१. जीवन में समय पालनता को महत्त्व दूंगा। जहाँ जो समय पहुँचने का होगा वहाँ उस समय पहुँच कर सामने वाले व्यक्ति के अनुरूप बनने की कोशिश करूँगा।

६२. व्याख्यान-वांचणी-प्रतिक्रमण आदि में नियत समय पर उपस्थित होऊँगा और प्रतिक्रमण आदि धार्मिक अनुष्ठान नियत समय पर ही करूँगा।

६३. पूज्य संत सतियों के दर्शनार्थ जाऊँगा तब सेल वाली घड़ी नहीं पहनूंगा।

६४. उनके साथ खुले मुख नहीं बोलूंगा।

६५. आज का बालक कल का श्रावक बनने वाला है। यह ध्यान में रख कर बालकों में सुसंस्कारों का सिंचन हो इसके लिए उन्हें जैनशाला भेजूंगा और उनमें धर्म संस्कारों की वृद्धि हेतु निरन्तर प्रयत्न करूँगा।

६६. बालक-बालिकाएं बचपन से ही सामायिक, प्रतिक्रमण आदि कंठस्थ कर ले इसके लिए पूरा ध्यान दूँगा।

६७. प्रतिक्रमण सूत्र को भगवान् ने आवश्यक कहा है। सभी श्रावक-श्राविका सामायिक प्रतिक्रमण सीखें इसके लिए प्रयत्न करूँगा।

६८. बालकों-युवाओं में संस्कार सिंचन हो इसके लिए धार्मिक शिविरों का आयोजन करूँगा।

६९. जिनेश्वर भगवंतों की आज्ञा का पालन करने के लिए सदैव तत्पर रहूँगा।

७०. श्रावक के २१ गुणों को जीवन में उतार कर सच्चे अर्थो में सच्चा श्रमणोपासक बनूंगा।

७१. उत्तरोत्तर प्रगति करते हुए प्रियधर्मी दृढ़धर्मी धीर वीर गंभीर विचक्षण सरल और नीडर बन कर जिनेश्वर भगवंतों का सच्चा श्रमण बनूंगा।

७२. अंत समय में संथारा कर पंडित मरण मरूँगा।

७३. अनंत उपकारी करुणा सागर चरम तीर्थंकर शासनपति भगवान् महावीर स्वामी को अंतर में रख कर परम उपकारी पूज्य महात्मा जी म. सा. के जीवन को सामने रख कर उनके गुणों को जीवन में उतार कर हम भी महात्मा बन कर परमात्मा बन सकेंगे।

अंत में इतना ही कहना है कि पूज्य महात्मा जी म. सा. हमारे बीच से चले गये उनका जीवन दीपक बुझ गया किन्तु वे अपने गुणों की सौरभ छोड़ गये हैं। उनमें अनेक गुण विद्यमान थे जिनका संपूर्ण वर्णन हो सके यह संभव नहीं फिर भी उनमें रहे हुए मुख्य मुख्य गुणों का वर्णन यहाँ करने में आया है। अपने जैसे अल्प सत्त्व वाले जीव सभी गुणों को अपने जीवन में उतार सके, ऐसा संभव नहीं हो तो उनमें से अंशतः (कुछ) गुणों को भी यदि हम स्वीकार कर सके तो अपनी आत्मा का भी कल्याण हो सकेगा।

..... तो चलो आज से ही उस महापुरुष के मार्ग पर चलने का पुरुषार्थ शुरू करें। स्व. पूज्य महात्मा जी म. सा. की आत्मा जहाँ भी हो वहाँ से आयुष्य पूर्ण कर अपनी अधूरी आराधना पूरी कर ज्ञान दर्शन चारित्र तप में उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए शीघ्र शाश्वत सुखों को प्राप्त करे, यही अभ्यर्थना (कामना) है। साथ ही हम सभी भी ऐसी ही साधना आराधना करके शाश्वत सुखों को प्राप्त कर सके, यही मंगल भावना है।

दया की दिव्यता

१. द्रव्य से – अठारह पापों–सावद्य योगों का पच्चक्खाण करना।

२. क्षेत्र से – संपूर्ण लोक आश्रित १८ पापों का त्याग करना।

३. काल से – १. या तो संपूर्ण अहोरात्रि के लिये दया करना या २. प्रातःकाल से सूर्यास्त प्रतिक्रमण तक दया करना।

४. भाव से – १. या तो दो योग तीन करण से छह कोटि से सावद्य योगों का त्याग करना या २. एक योग तीन करण से तीन कोटि से करना।।

५. नाम से – अठारह पापों में मुख्यतया हिंसा के पाप से विरत होना है इसीलिये यह आराधना दया आराधना कहलाती है।

६. स्वामी – १. दया की आराधना कर्मभूमि के गर्भज मनुष्य ही कर सकते हैं २. तिर्यचों में जाति स्मरण ज्ञान आदि वाले आराधना कर सकते हैं।

७. सामायिक – १. दया में कम से कम ग्यारह सामायिक नियम से करनी होती है। इससे अधिक सामायिक हो तो अच्छा ही है किन्तु इससे कम तो नहीं।

८. वेश – १. दया में सामायिक हो तब सामायिक का

वेश किन्तु २. सामायिक नहीं हो तब भी सामायिक का वेश रहे तो उत्तम है।

९. लाभ - १. दया वाले को दया की आराधना का लाभ मिलता है २. दाता को दया करने का लाभ मिलता है ३. वैयावृत्य करने वाले को वैयावृत्य का लाभ मिलता है। ४. प्रभावना करने वाले को बहुमान का लाभ मिलता है। प्रत्येक को अपना अपना लाभ मिलता है किन्तु किसी को भी दूसरों की करणी का लाभ प्राप्त नहीं होता।

१०. भाग - १. दया करने वाला यदि अपने घर का ही आहार काम ले तो उसे दया का और आहार का दोनों लाभ मिलता है २. यदि दाता का आहार काम में ले तो उसकी दया का लाभ दाता को नहीं मिलता। दाता को आहार से दया में सहायक बनने का लाभ मिलता है किन्तु दया का लाभ तो दया करने वाले को ही मिलता है।

११. दाता - दाता जो अर्थ प्रदान करता है उसमें उसे परिग्रह घटाने का लाभ मिलता है तथा दया की अनुमोदना का भी लाभ प्राप्त होता है।

१२. वैयावृत्य - वैयावृत्य करने वाले में जो दया करने वालों को भोजन बना कर जीमाता है उसमें वैयावृत्य का लाभ ही मुख्य है। दया करने वाले को भोजन द्वारा दया में सहायक बनने से वैयावृत्य का लाभ तथा दया की अनुमोदना का लाभ मिलता है।

१३. स्थान - १. सामायिक करने वाले को एक सामायिक का लाभ मिलता है २. उपवास करने वाले को पांच सामायिक का लाभ मिलता है ३. दया करने वाले को सोलह सामायिक का लाभ मिलता है ४. प्रतिपूर्ण पौषध करने वाले को ३२ सामायिक का लाभ मिलता है यानी पौषध के बाद दया का स्थान दूसरा है। अर्थात् उपवास की अपेक्षा भी दया का स्थान ऊँचा है।

१४. सामर्थ्य - पर्युषण के आठों दिनों में पौषध करने की प्रत्येक की शक्ति न हो, प्रथम और अंतिम दिवस तथा पाक्षिक पर्व के दिन पौषध करने की शक्ति न हो तो भी आठों ही दिन दया निवृत्तिमय जीवन व्यतीत कर सकता है अर्थात् दया की आराधना सभी के लिए उत्तम है।

१५. पडिमा - १. श्रावक की ग्यारह पडिमा की जो आराधना नहीं कर सके २. उसमें दया करने वाला नौवी पडिमा जैसा लाभ प्राप्त करता है और ३. गोचरी की दया करने वाला ग्यारहवीं पडिमा जैसा फल प्राप्त कर सकता है।

१६. व्रत - ग्यारहवें पौषधव्रत के दो भेद हैं - १. प्रतिपूर्ण और २ देश। दया श्रावक के ग्यारहवें पौषध व्रत में देश पौषधव्रत के अंतर्गत गिनी जाती है।

१७. दृष्टांत - शंख श्रावक ने श्रावक संघ को दया पौषध करने की प्रेरणा प्रदान की थी और फिर विवेक और बढ़ते परिणामों से स्वयं ने प्रतिपूर्ण पौषध की आराधना की थी।

१८. कर्म - दया पौषध करने वाला मोहनीय कर्म और असाता वेदनीय आदि कर्म जो पूर्व में बंधे हुए हैं, उन्हें क्षय करता है और नये कर्म नहीं बांधता है और साता उपजती है। पौषध करने वाला वीर्यान्तराय कर्म को क्षय करता है।

१९. अव्यापार - उपवास करने वाला २४-३६ घंटे अनाहार तप करता है किन्तु अठारह पापों का त्याग नहीं करता जबकि दया करने वाला १२-१५ घंटे, स्त्रियाँ घर के चूले चक्की आदि के व्यापार का त्याग करती है और पुरुष दुकान के खरीदने बचेने आदि के व्यापार का त्याग करते हैं अर्थात् उपवास से दया का स्थान ऊँचा है।

२०. दूसरे भव - दया करने वाला (शेषकाल-चातुर्मास में या जो बार बार दया करता है) नरक में करोड़ों पल्योपमों में भोगेजाने वाले असाता आदि कर्मों की निर्जरा कर सकता है और उतने ही देवायुष्य में भोगे जा सके उतने साता आदि कर्मों का उपार्जन करता है।

२१. तीसरे भव - दया करने वाले को तीसरे भव में १० दुर्लभ बोलों की सुलभता होती है। वह दस प्रकार के सुखों को भोग कर संयम की आराधना कर मोक्षगामी बनता है।

मर जाना मंजूर लेकिन संयम में दोष लगाना नहीं।
संसार खारो जहर छे, संयम में लीला लहर छे।
थोडा जोर ओर दो, संसार को छोड दो।
जेना आंखों में अमी तेने दुनिया गमी।

वस्तु (द्रव्य) शुद्धि के लिए जागृत रहें

१. गोचरी का लाभ मिले - इसके लिए बार-बार विनती करनी, गोचरी के समय असूझता नहीं रहना, घर के दरवाजे अंदर से बंद नहीं रखना, आने के मार्ग में शाक आदि का आरंभ करने को नहीं बैठना, रसोई तैयार नहीं हुई हो तो अन्य तैयार जो प्रासुक व निर्दोष वस्तु हो उसका निमंत्रण करना, ज्यों ज्यों रसोई तैयार होती जाय उसे अलग सूझती रखना, बहराने में उतावल नहीं करना, पूछ करके फिर किसी वस्तु का स्पर्श करना, आहार पानी बहराने के बाद हाथ नहीं धोना।

२. ऐसा व्यक्ति नहीं बहरा सकता है - सचित्त पानी, हरी वनस्पति अग्नि आदि से स्पर्श किये हुए हो, ए. सी. में बैठे हुए हो, जिसके हाथ में बर्फ वाली वस्तु हो, माथे में फूल लगे हो, पान चबा रहे हो, प्रेस (ईस्त्री) करते हो, धूम्रपान कर रहे हो, कोई भी इलैक्ट्रिक साधन चालू हो और उसके स्पर्श हो रहा हो तथा सेल वाली घड़ी पहने हुए हो ऐसा व्यक्ति पूज्य संत सतियों को नहीं बहरा सकता है।

३. ऐसी वस्तुएं नहीं बहराई जा सकती है - सचित्त नमक, वनस्पति, अनाज, सचित्त मेवा, पानी आदि सचित्त वस्तुओं से स्पर्शित पड़ी हुई वस्तु, फ्रिज में रखी हुई वस्तु जिस पर पानी की बूंदे जमी हुई हो ऐसी पात्र की वस्तुएँ, खुले कपाट (जो फिक्स न हो) या टेबल पर सचिन वस्तु हो तो वहाँ पड़ी हुई वस्तु और किसी भी प्रकार की अचित्त वस्तु नहीं बहराई जा सकती है।

४. घर असूझता होता है - यदि असूझता व्यक्ति बहराने

आवे, बहराते समय असूझती वस्तु का स्पर्श हो जाय या उसे आगे पीछे करे, बहराने के लिए पानी अग्नि वनस्पति आदि जीवों की हिंसा करे, दूध को फूंक मारे, ऊपर से वस्तु गिरावे, लाईट करे तो घर असूझता हो जाता है।

५. साधु साध्वियों के लिए - आहार आदि बनाना नहीं, बहराने के लिए अधिक नहीं बनाना, बहराने के बाद कोई वस्तु कम पड़े तो पुनः नहीं बनाना, ऊनोदरी करना या अन्य वस्तुओं से काम चला लेना, ४२ दोषों से रहित प्रासुक और निर्दोष वस्तु बहराने का लाभ लेने का लक्ष्य रखना।

पहला शिष्य महान्

(तर्ज - त्रिशला का भाग्य सवाया रे ....)

चम्पक गुरुवर ने पाया रे, पहला शिष्य महान्
जिसका था पुण्य सवाया रे, पहला शिष्य महान्॥ टेर॥
गुजराती धरा है प्यारी, जन-जन को मोहनगारी
एक रत्न चुड़ा से आया रे........पहला.............. ॥ १ ॥
जगमग चमका है जग में, वैराग्य भरा रग रग में
संयम ही मन में भाया रे.........पहला.............. ॥ २ ॥
एक विरल विभूति पावन, जो जन-जन के मन भावन
जामनगर पहुंचाया रे................पहला.............. ॥ ३ ॥
अस्त हुआ एक सूरज, जीव गया यह देह तज
फूल गया मुरझाया रे..............पहला.............. ॥ ४ ॥
हम सब की यही भावना, शाश्वत सुखों को पाना
आत्मलीन बन जाया रे............पहला.............. ॥ ५ ॥
पूज्य जयन्ती मुनिवर, हे महात्मा हे गुणीवर
श्रद्धा के कुसुम चढ़ाया रे........पहला.............. ॥ ६ ॥

पू० महात्मा जी म. सा. के संथारे के भाव

(तर्ज-वरदान मांगता हूँ..........)

कृपा प्रभु जी करना, समाधि मरण मैं पाऊं।
भव भ्रमण को मिटाऊँ......................कृपा०॥ टेर॥
साधना की यह परीक्षा, अन्तिम समय में दे दूँ,
अरिहन्त को दिल में रखकर, सफल मैं बन जाऊँ॥ भव॥ १॥
अनंत मरण हुए हैं, फिर भी न अंत पाया,
आतम का ज्ञान पाकर, सब मोह जाल को तोड़ूं॥ भव॥ २॥
जीवन अगर जो बचे, प्रभु आज्ञा को आराधूं,
मरण अगर जो आवे, अति हर्ष से स्वीकारूँ॥ भव॥ ३॥
मरण का काल जानकर, सावधान मैं बन जाऊँ,
देव गुरु को साक्षी रखकर, आलोचना मैं करलूं॥ भव॥ ४॥
दोषों की शुद्धि करलुं, क्षमा सभी की मांगू,
भव भव प्रभु मैं तेरी, सब आज्ञा को आराधूं॥ भव॥ ५॥
मोक्ष सुखों दिलावे, मरण ऐसा दयालु,
जीर्ण शरीर छुड़ावे, फिर क्यों इससे घबराऊं॥ भव॥ ६॥
यह शरीर नहीं है मेरा, पीड़ा क्यूं मेरी जानूं,
सब स्नेही और स्वजन की, ममता को मैं त्यागुं॥ भव॥ ७॥
अरिहंत शरण स्वीकारूँ, सिद्ध शरण स्वीकारुं,
साधु शरण स्वीकारूँ धम्मं शरण स्वीकारूँ॥ भव॥ ८॥

आनन्द का सागर हूँ मैं, दुःख और पीड़ा से भिन्न हूँ,
पर भाव को तजूं मैं, स्वभाव मैं रमजाऊँ॥ भव॥ ९॥
मैं एक शुद्ध आत्मा हूँ, ज्ञाता दृष्टा रहता हूँ।
परमाणु भी नहीं मेरा, निज मस्ती में रम जाऊँ॥ भव॥ १०॥
शक्ति प्रभुजी देना, शुद्ध भाव को मैं धारुं,
तुझ शरण को मैं पाकर, शिव सुख को शीघ्र पाऊं॥ भव॥

– गौतम मुनि

हार्दिक श्रद्धांजलि

पूज्य श्री जयंतीलाल जी म. सा. का व्यक्तित्व जल तरंगों के समान निरन्तर गतिमान, रवि रश्मियों के समान आलोकमय एवं सागर के समान गंभीर था। आप मन से सरल हृदय से भावना शील व्यवहार से मृदुल चित वृतियों से शान्त और निर्मल थे। सूर्य की प्रथम किरण से आप अपनी साधना में जुट जाया करते थे, आप बहुत ही कम समय विश्राम में लगाते थे आपके जीवन में परमात्म दर्शन की झलक देने को मिली। आपकी दिन चर्या को देखकर मन बोल उठता है -

माया के परपंच में रहते हुए माया से दूर।
ज्ञान के सागर के मोती भक्ति की मस्ती में चूर।
लोग जिस को ढूंढते हैं तुमने उस को पा लिया।
तेरी आंखों में झलकता था सच्चे श्रमण का नूर॥

✍: चन्द्रभान जैन आवली वाले
C/o एस. एस. जैन सभा सोनीपतमंडी (हरियाणा)

श्रद्धांजलि-श्रद्धा सुमन

(तर्ज-सुरजडा ताप फेके धरती पर.....)

ओ क्रूर छे काल, शरम नहीं कोई जातनी,
ले गयो....भगवानने, छीन लीयो जिन शासननी गोदथी
चंपकभाई पर कृपा करीने दूर से आप पधार्या,
रणजीतनगरना भाग्य खील्या भगवान् समवसर्या
जिनवाणी नो घोघ.....वहाव्यो खूब अग्लानभावे
अंतिम सुधी ले गयो......... ॥ १ ॥

संवेग-निर्वेदमय जीवन, प्रेक्टीकल सिखाया,
धर्म के लिए दृढ़ता पूर्वक मरना भी सिखाया,
चरम चोमासो हुओ...जीवन पुरो...अमर हुई आ नगरी
अंतिम सुधी ले गयो........ ॥ २ ॥

जीवन्त आचारांग हता ने, जिनवानी ना झरना,
आशा हमारी रही अधुरी, अब कहा पर मिलना
क्रूर छे काल घोर.... चाले न जोर, कर दिनी है घातडी
अंतिम सुधी ले गयो....... ॥ ३ ॥

किं परं मरणं सिया का, जीवन में घूंटण किया,
दोष लगाना नहीं है मंजूर, अंतिम श्वास निभाया,
प्रेरणा पंथनो दीवडो.....झलहलतो बुझ गयो है आखरी,
अंतिम सुधी ले गयो.......... ॥ ४ ॥

वर्ष २१ मां फल्यो मनोरथ, सेवानो मोको मिलियो
पर इसमे अभिश्राप लाग्यो थो, वो नहीं अमने समझीयो
वद आ बारस ऊगी.......(भगवन पर) हमलो करगी।
जुलम हो गया आखरी, अंतिम सुधी ले गयो........ ॥ ५ ॥

श्रद्धांजलि-श्रद्धा सुमन

(तर्ज-मिलती है जिन्दगी में........)

जीवन नैया तारक महात्माजी क्यां गया?
प्रवचनना देनारा गुरुवर क्यां गया?
शासनना सितारा महात्माजी क्यां गया?
आदर्श हतुं जीवन, गृहस्थ जीवन मां,
दृढ़ वैराग्य पामी आव्या गुरु शरण मां,
पच्छावि ते पयाया अे सूत्र अपनावीया,
मृत्यु भले आवे पण दोषो ना लगावीया,
काम-भोग कांटा जेर, कालो नाग लागीया,
केम फंसे संसारमां, अज्ञानी जीवडा?
जिंदा मुर्दा बनना अे मंत्र साधियो
परिषह अने कष्टोमां वधु आत्म बलियो
महात्माजीनो अे पावर बहु याद आवशे,
उपदेश अेनो आजे बहु याद आवशे,
तलसी रह्या छे सहु साधको, महात्माने सांभलवा
झंखी रह्या छे साधको, भिक्खुने सांभलवा

ऋजुताने वरेला शासन शिरोमणि

गच्छना हता अे रत्न आदर्श मूर्ति

जीवन तेल खूटयुं पण आत्मा छे अमर,

अनंत गुणी आत्मा गुणोथी छे सभर

'प्रेमल' नी आ प्रार्थना तमे दूर ना जशो,

अमने अहींया छोड़ी, महात्माजी क्यां गया?

श्रद्धांजलि

(तर्ज-रघुपति राघव राजा राम.......)

महावीर 'महात्मा' अेक समान, 'अमि' अंतरमां उपजे मान।
अर्पण करतां आगमज्ञान, धरतां निश-दिन आतम ध्यान॥

केन्द्रमां क्रिया भले प्रधान, परिहामां पण ज्ञान प्रकाश।
प्रश्न पूछे कोई वक्रस्वभाव, पण 'महात्मा' नहीं मनमां उदास॥ १॥

महामना ने हृदय उदार, पापीनो पण करे उद्धार।
स्याद्‌वादना करी संवाद, खटपट के मनमां नहीं खार॥ २॥

स्व पर नो नहीं भेद लगार, नाना मोटा सौ अणगार।
होठ हैयामां हरख अपार, मलतां मुक्ति न लागे वार॥ ३॥

'जयंत मुनि सार्थक 'महात्मा', समजे कोईक भविक आत्मा,
भाण उग्यो भव्य 'राजस्थान', अस्ताचल 'जामनगर स्थान'॥ ४॥

चंपक महेता परिवार, विनय विवेक करे मनवार।
पधारो चातुर्मास अमारे द्वार, संघ क्षेत्रनो थाय उद्धार॥ ५॥

क्षेत्र, काल ने कर्म विपाक, केवली विण कोण लावे ताग।
हृदयरोगनो हुमलो अचानक, विखार्यो जैन जीवतो बाग॥ ६॥

सांभली 'अमी' अंतर गभराय, अस्थिर जीवननो शुं उपाय।
प्रमाद तजी पुरुषार्थ कराय, अंते समाधि पण सचवाय॥ ७॥
स्थानकवासी साधु समाज, सुणजो 'अमी' अंतरनो आवाज।
रांकनुं रतन गयुं छे आज, क्यांथी मले महात्मा मुनिराज॥ ८॥

– बोटाद संप्रदायना सरलस्वभावी बा.ब्र. पूज्य 'अमीगुरु'
रचित प्रेषक :- कनुभाई खाटडीया वडोदरा

प्रतिज्ञा-पत्र

अरिहंत-सिद्ध साक्षी से मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं इस पुस्तिका को कम से कम एक बार अवश्य पढ़ूंगा और दूसरों को भी पढ़ने की प्रेरणा करूँगा।

बड़ी साधु वन्दना का महत्त्व

- इस रचना के रचनाकार आचार्य पूज्य जयमल जी म. सा. है जो विशुद्ध चारित्रवंत दीर्घ तपस्वी निद्रा विजेता थे।
- यह रचना मुख्यतया आगम के आधार पर है। इसमें उत्तराध्ययन आदि आठ आगमों के आधार का कथन स्वयं कवि आचार्य श्री जी द्वारा किया गया है। इसके

आगम में तो कोई निषेधात्मक नहीं है इसका भी उल्लेख होने में आता है अर्थात् यह रचना प्रामाणिक है अतः निःशंक रूप से पढ़ने योग्य है.

- [illegible] में चार अनुयोग कहे गये हैं - इनमें से यह रचना मुख्यतः कथानुयोग होने के कारण छोटे-बड़े सभी के लिए सरल एवं रुचिकर है।
- यह रचना मूल राजस्थानी हिंदी भाषा में है अतः सभी लोग इस रचना को पढ़ सुन कर समझ सकते हैं।
- शब्द की अशुद्धि इस रचना पाठ में बाधक नहीं है।
- इस काव्य का पाठ धर्मस्थानक पौषधशाला आदि में तो किया ही जाता है किन्तु ऐसे स्थल नहीं भी मिले तो घर-दुकान-गोडाऊन आदि में भी पढ़ सकते हैं। यात्रा प्रवास, वाहन आदि में भी बोल सकते हैं।
- कालिक एवं उत्कालिक सूत्रों के लिये तो स्वाध्याय काल निश्चित है किन्तु बड़ी साधु वंदना का पाठ चौबीस ही घण्टे किया जा सकता है इसमें अस्वाध्याय का कोई भी कारण बाधक नहीं है।
- इस काव्य में ११० (१११) दोहे हैं। इसको बोलते हुए पढते हुए वाचन में एकाग्रता रहे, चित्त में रस रहे और भावों में वृद्धि होती रहे तो अनंती निर्जरा होती है। इस रचना की पहली गाथा का प्रथम चरण 'नमूं अनंत चौवीसी' इतना मात्र भी यदि भाव पूर्वक बोला जाय तो अनंत जीवों को वंदना और अनंत निर्जरा होती है।

- धम्मो मंगल का स्वर अनुष्टुप है। लोगस्स की छह गाथा का स्वर आर्या है भक्तामर का छंद वसंततलिका है जबकि साधु वंदना दोहे में बनायी है इसका स्वर प्रायः सभी को आता ही है और दूसरों के साथ गाने में भी राग सहज बैठ जाती है।
- अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, ज्ञानी और तपस्वी इन सात का गुणाग्राम करते हुए उत्कृष्ट रस आवे तो तीर्थंकर गोत्र बंधता है। बड़ी साधु वन्दना में भी अर्हन्त आदि का ही गुणग्राम है।
- इस रचना की स्वाध्याय और अनुप्रेक्षा से जीवों के दान, शील, तप, भावना आदि के संस्कार पुष्ट होते हैं।
- स्वाध्याय आदि अकाल में बोले तो देव उपद्रव की संभावना रहती है। किन्तु बड़ी साधु वंदना में अशुद्धि आदि हो तो कोई उपद्रव नहीं होता है।
- बड़ी साधु वंदना समूह में, परिवार के साथ में, साधर्मी के साथ में भी गाई जा सकती है और एकांत पांच इन्द्रियों का निरोध करके एक चित्त एकत्व भावना के साथ भी गायी जा सकती है।
- यह रचना स्थानकवासी आचार्य श्री की होने पर भी आगम आधारित होने से सर्व संप्रदायों को मान्य है और सभी को उनका पाठ आगम की तरह करना चाहिये। स्थानकवासी संघ को तो विशेष आग्रह पूर्वक सर्वप्रथम मान महिमा के साथ बड़ी साधु वंदना कंठस्थ कर इसका नियमित पाठ करना चाहिये।

नमूँ अनन्त चौवीसी, ऋषभादिक महावीर ।
आरज क्षेत्रमाँ, घाली धर्म नी सीर ॥१॥
महा अतुल बली नर, शूर वीर ने धीर ।
तीरथ प्रवर्तावी, पहुंत्या भवजल तीर ॥२॥
सीमंधर प्रमुख, जघन्य तीर्थंकर वीश ।
छे अढी द्वीप मां, जयवंता जगदीश ॥३॥
एक सौ ने सित्तर, उत्कृष्ट पदे जगीश ।
धन्य मोटा प्रभुजी, तेह ने नमावुं शीश ॥४॥
केवली दोय कोडी, उत्कृष्टा नव कोड़ ।
मुनि दोय सहस्त्र कोडी, उत्कृष्टा नव सहस्त्र कोड ।५।
विचरे विदेह में, मोटा तपसी घोर ।
भावे करी वन्दूं, टाले भवनी खोड ॥६॥
चौवीसे जिनना, सघला ही गणधार ।
चौदह सौ ने बावन, ते प्रणमूं सुखकार ॥७॥
जिन शासन नायक, धन्य श्री वीर जिनंद ।
गौतमादिक गणधर, वर्तायो आनन्द ॥८॥
श्री ऋषभदेव ना, भरतादिक सौ पूत ।
वैराग्य मन आणी, संयम लियो अद्भूत ॥९॥
केवल उपजाव्यूं, कर करणी करतूत ।
जिनमत दीपावी, सघला मोक्ष पहूँत ॥१०॥

श्री भरतेश्वर ना, हुआ पटोधर आठ ।
आदित्य जशादिक, पहुंच्या शिवपुर वाट ।। ११ ।।
श्री जिन अन्तरना, हुआ पाट असंख्य ।
मुनि मुक्ति पहुंच्या, टाली कर्म नो वंक ।। १२ ।।
धन्य कपिल मुनिवर, नमि नमूं अणगार ।
जेणे तत्क्षण त्याग्यो, सहस्त्र रमणी परिवार । १३ ।
मुनिवर हरिकेशी, चित्त मुनिश्वर सार ।
शुद्ध संयम पाली, पाम्या भवनो पार ।। १४ ।।
वली इक्षुकार राजा, घर कमलावती नार ।
भग्गू ने जशा, तेहना दोय कुमार ।। १५ ।।
छये छति ऋद्धि छांडी ने, लीधो संयम भार ।
इण अल्पकाल माँ, पाम्या मोक्ष द्वार ।। १६ ।।
वलि संयति राजा, हिरण आहिड़े जाय ।
मुनिवर गर्दभाली, आण्यो मारग ठाय ।। १७ ।।
चारित्र लईने, भेट्या गुरुना पाय ।
क्षत्रिराज ऋषीश्वर, चर्चा करी चित्तलाय ।। १८ ।।
वलि दशे चक्रवर्ती, राज्य रमणी ऋद्धि छोड़ ।
दशे मुक्ति पहुँच्या, कुल ने शोभा चहोड़ ।। १९ ।।
इण अवसर्पिणी माँ, आठ राम गया मोक्ष ।
बलभद्र मुनीश्वर, गया पंचमे देवलोक ।। २० ।।
दशार्णभद्र राजा, वीर वाँद्या धरी मान ।
पछि इन्द्र हटायो, दियो छह काय अभयदान । २१ ।
करकण्डू प्रमुख, चारे प्रत्येक बुद्ध ।
मुनि मुक्ति पहुंच्या, जीत्या कर्म महाजुद्ध ।। २२ ।।

धन्य मोटा मुनिवर, मृगापुत्र जगीश ।
मुनिवर अनाथी, जीत्या राग ने रीश ।। २३ ।।
वलि समुद्रपाल मुनि, राजमति रहनेम ।
केशी ने गौतम पाम्या शिवपुर क्षेम ।। २४ ।।
धन्य विजयघोष मुनि, जयघोष वलि जाण ।
श्री गर्गाचार्य पहुच्या छे निर्वाण ।। २५ ।।
श्री उत्तराध्ययन माँ, जिनवर कर्‍या वखाण ।
शुद्ध मन से ध्यावो, मन माँ धीरज आण ।। २६ ।।
वलि खंदक सन्यासी, राख्यो गौतम स्नेह ।
महावीर समीपे, पंच महाव्रत लेह ।। २७ ।।
तप कठिन करीने, झोंसी आपणी देह ।
गया अच्युत देवलोके, चवि लेसे भव-छेह। २८।
वलि ऋषभदत्त मुनि, सेठ सुदर्शन सार ।
शिवराज ऋषीश्वर, धन्य गांगेय अणगार ।। २९ ।।
शुद्ध संयम पाली, पाम्या केवल सार ।
ये चारे मुनिवर, पहुंच्या मोक्ष मँझार ।। ३० ।।
भगवन्त नी माता, धन्य धन्य सती देवानन्दा ।
वलि सती जयन्ती, छोड़ दिया घर फंदा ।। ३१ ।।
सती मुक्ति पहुंच्या, वलि ते वीरनी नंद ।
महासती सुदर्शना, घणी सतियों ना वृन्द ।। ३२ ।।
वलि कार्तिक सेठे, पड़िमा वही शूरवीर ।
जीम्यो मोरा-ऊपर, तापस बलती खीर ।। ३३ ।।
पछी चारित्र लीधो, मित्र एक सहस्त्र आठ धीर ।
मरी हुआ शक्रेन्द्र, च्यवी लेसे भव तीर ।। ३४ ।।

वलि राय उदायन, दियो भाणेज ने राज ।
पछी चारित्र लेइने, सार्‌या आतम काज ।। ३५ ।।
गंगदत्त मुनि आनन्द, तिरण तारण री जहाज ।
कौशल मुनि रोहा, दियो घणाने साज ।। ३६ ।।
धन्य सुनक्षत्र मुनिवर, सर्वानुभूति अनगार ।
आराधक होइ ने, गया देवलोक मंझार ।। ३७ ।।
चवी मुक्ति जासे, वलि सिंह मुनीश्वर सार ।
बीजा पण मुनिवर, भगवती माँ अधिकार ।। ३८ ।।
श्रेणिक ना बेटा, मोटा मुनिवर मेघ ।
तजी आठ अन्तेउरी, आण्यो मन संवेग ।। ३९ ।।
वीर पे व्रत लइने, बांधी तप नी तेग ।
गया विजय विमाने, चवी लेसे शिव वेग ।। ४० ।।
धन्य थावच्चा पुत्र, तजी बत्तीसे नार ।
तेनी साथे निकल्या, पुरुष एक हजार ।। ४१ ।।
शुकदेव संन्यासी, एक सहस्र शिष्य लार ।
पंचशय सुं शैलक, लीधो संजमभार ।। ४२ ।।
सब सहस्र अढाई, घणा जीवों ने तार ।
पुंडरिक गिरि ऊपर, कियो पादपोपगमन संथार ।४३।
आराधक हुई ने, कीधो खेवो पार ।
हुआ मोटा मुनिवर, नाम लियां निस्तार ।। ४४ ।।
धन्य जिनपाल मुनिवर, दोय धन्ना हुआ साध ।
गया प्रथम देवलोके, मोक्ष जासे आराध ।। ४५ ।।
मल्लिनाथ ना छह मित्र, महाबल प्रमुख मुनिराय ।
सर्वे मुक्ति सिधाव्या, मोटी पदवी पाय ।। ४६ ।।

वलि जितशत्रु राजा, सुबुद्धि नामे प्रधान ।
पोते चारित्र लईने, पाम्या मोक्ष निधान ।। ४७ ।।
धन्य तेतली मुनिवर, दियो छकाय अभयदान ।
पोटिला प्रतिबोध्या, पाम्या केवलज्ञान ।। ४८ ।।
धन्य पाँचे पांडव, तजी द्रोपदी नार ।
थेवरांनी पासे, लीधो संयम भार ।। ४९ ।।
श्री नेमि वन्दन नो, एहवो अभिग्रह कीध ।
मास-मास खमण तप, शत्रुंजय जई सिद्ध ।। ५० ।।
धर्मघोष तणा शिष्य, धर्मरुचि अणगार ।
कीडियों नी करुणा, आणी दया अपार ।। ५१ ।।
कड़वा तुंबा नो, कीधो सगलो आहार ।
सर्वार्थ सिद्ध पहुँच्या, चवी लीधो भवपार ।। ५२ ।।
वलि पुंडरीक राजा, कंडरीक डिगियो जाण ।
पोते चारित्रे लईने, न घाली धर्म माँ हाण ।। ५३ ।।
सर्वार्थ सिद्ध पहुंच्या, चवी लेसे निर्वाण ।
श्री ज्ञातासूत्र माँ, जिनवर कर्या वखाण ।। ५४ ।।
गौतमादिक कुंवर, सगा अठारह भ्रात ।
सर्व अंधकवृष्णि सुत, धारिणी ज्यांरी मात ।। ५५ ।।
तजी आठ अन्तेउर, काढ़ी दीक्षा नी बात ।
चारित्र लईने, कीधो मुक्ति नो साथ ।। ५६ ।।
श्री अनीकसेनादिक, छये सहोदर भाय ।
वसुदेव ना नन्दन, देवकी ज्यांरी माय ।। ५७ ।।
भद्दिलपुर नगरी, नाग गाहावई जाण ।
सुलसा घर वधिया, सांभली नेमि नी वाण ।। ५८ ।।

तजी बत्तीस बत्तीस अन्तेउर, निकलिया छिटकाय ।
नल कूबर समाणा, भेट्या श्री नेमि ना पाय।५९।
करी छठ छठ पारणा, मन में वैराग्य लाय ।
एक मास संथारे, मुक्ति विराज्या जाय ।। ६० ।।
वली दारुक सारण, सुमुख दुमुख मुनिराय ।
कुँवर अनादृष्टि, गया मुक्तिगढ़ मांय ।। ६१ ।।
वसुदेवना नन्दन, धन्य धन्य गजसुकुमाल ।
रूपे अति सुन्दर, कलावन्त वय बाल ।। ६२ ।।
श्री नेमि समीपे, छोड्यो मोह जंजाल ।
भिक्षु नी पडिमा, गया मसाण महाकाल ।। ६३ ।।
देखी सोमिल कोप्यो, मस्तक बांधी पाल ।
खेराना खीरा, शिर ठविया असराल ।। ६४ ।।
मुनि नजर न खंडी, मेटी मननी झाल ।
परीषह सहीने, मुक्ति गया तत्काल ।। ६५ ।।
धन्य जाली मयाली, उवयालादिक साध ।
शाम्ब ने प्रद्युम्न, अनिरुद्ध साधु अगाध ।। ६६ ।।
वलि सत्यनेमि दृढ़नेमि, करणी कीधी निर्बाध ।
दशे मुक्ति पहुंच्या, जिनवर वचन आराध ।। ६७ ।।
धन्य अर्जुनमाली, कियो कदाग्रह दूर ।
वीर पै व्रत लेईने, सत्यवादी हुआ शूर ।। ६८ ।।
करी छठ छठ पारणा, क्षमा करी भरपूर ।
छह मासा मांही, कर्म किया चकचूर ।। ६९ ।।
कुँवर अइमुत्ते, दीठा गौतम स्वाम ।
सुणी वीर नी वाणी, कीधो उत्तम काम ।। ७० ।।

चारित्र लईने, पहुंच्या शिवपुर ठाम ।
धुर आदि मकाई, अन्त अलक्ष मुनि नाम ।। ७१ ।।
बलि कृष्णराय नी, अग्रमहिषी आठ ।
पुत्र-बहू दोये, संच्या पुण्य ना ठाठ ।। ७२ ।।
जादव कुल सतियाँ, टाली दुःख उच्चाट ।
पहुंची शिवपुर मां, ए छे सूत्र नो पाठ ।। ७३ ।।
श्रेणिक नी राणी, काली आदिक दश जाण ।
दशे पुत्र वियोगे, साँभली वीरनी वाण ।। ७४ ।।
चन्दन बाला पै, संयम लेई हुई जाण ।
तप करी देह झोंसी, पहुंची छे निर्वाण ।। ७५ ।।
नंदादिक तेरह, श्रेणिक नृप नी नार ।
सघली चन्दनबाला पै, लीधो संयम भार ।। ७६ ।।
एक मास संथारे, पहुंची मुक्ति मंझार ।
ए नेवुं जणा नो, अन्तगड मां अधिकार ।। ७७ ।।
श्रेणिक ना बेटा, जालियादिक तेवीश ।
वीर पै व्रत लेईने, पाल्यो विश्वावीश ।। ७८ ।।
तप कठिन करी ने, पूरी मन जगीश ।
देवलोके पहुंच्या, मोक्ष जासे तजी रीश ।। ७९ ।।
काकन्दी नो धन्नो, तजी बत्तीसे नार ।
महावीर समीपे, लीधो संयम भार ।। ८० ।।
करी छठ छठ पारणा, आयम्बिल उज्झित आहार ।
श्री वीर वखाण्यो, धन धन्नो अणगार ।। ८१ ।।
एक मास संथारे, सर्वार्थ सिद्ध पहुंत ।
महाविदेह क्षेत्र मां, करसे भव नो अन्त ।। ८२ ।।

धन्नानी रीते, हुआ नव ही संत ।
श्री अनुत्तरोववाइय मां, भाँखी गया भगवंत।८३।
सुबाहु प्रमुख, पांच पांचसौ नार ।
तजी वीर पै लीधा, पांच महाव्रत सार ।। ८४ ।।
चारित्र लेई ने, पाल्यो निरतिचार ।
देवलोके पहुंच्या, सुखविपाके अधिकार ।। ८५ ।।
श्रेणिक ना पौत्रा, पउमादिक हुआ दस ।
वीर पै व्रत लेईने, काढ्यो देह नो कस ।। ८६ ।।
संयम आराधी, देवलोक मां जइ वस ।
महाविदेह क्षेत्र मां, मोक्ष जासे लेई जस ।। ८७ ।।
बलभद्र ना नन्दन, निषधादिक हुआ बार ।
तजी पचास अन्तेउरी, त्याग दियो संसार ।। ८८ ।।
सहु नेमि समीपे, चार महाव्रत लीध ।
सर्वार्थसिद्ध पहुंच्या, होशे विदेहे सिद्ध ।। ८९ ।।
धन्नो ने शालिभद्र, मुनीश्वरों नी जोड़ ।
नार्या ना बन्धन, तत्क्षण नाख्यां तोड़ ।। ९० ।।
घर कुटुम्ब कबिलो, धन कंचन नी कोड़ ।
मास मास खमण तप, टालसे भव नी खोड़। ९१।
श्री सुधर्मा स्वामी ना शिष्य, धन धन जम्बू स्वाम ।
तजी आठ अन्तेउरी, माता पिता धन धाम ।। ९२ ।।
प्रभवादिक तारी, पहुंच्या शिवपुर ठाम ।
सूत्र प्रवर्तावी, जग मां राख्युँ नाम ।। ९३ ।।
धन्य ढंढण मुनिवर, कृष्ण राय ना नन्द ।
शुद्ध अभिग्रह पाली, टाल दियो भव फन्द।। ९४।।

वलि खन्दक ऋषि नी, देह उतारी खाल ।
परीषह सहीने, भव फेरा दिया टाल ।। ९५ ।।
वलि खन्दक ऋषि ना, हुआ पांचसौ शिष्य ।
घाणी मां पील्या, मुक्ति गया तजी रीश ।। ९६ ।।
संभूतिविजय तणा-शिष्य, भद्रबाहु मुनिराय ।
चौदह पूर्वधारी, चन्द्रगुप्त आण्यो ठाय ।। ९७ ।।
वलि आर्द्र कुमार मुनि, स्थूलिभद्र नन्दिषेण ।
अरणक अइमुत्तो, मुनिश्वरों नी श्रेण ।। ९८ ।।
चौबीसे जिनना, मुनिवर संख्या अठावीश लाख ।
ऊपर सहस्त्र अडतालीस, सूत्र परम्परा भाख। ९९।
कोइ उत्तम वांचो, मोंढे जयणा राख ।
उघाड़े मुख बोल्यां, पाप लगे इम भाख ।। १०० ।।
धन्य मरुदेवी माता, ध्यायो निर्मल ध्यान ।
गज होदे पायो, निर्मल केवलज्ञान ।। १०१ ।।
धन्य आदीश्वर नी पुत्री ब्राह्मी सुन्दरी दोय ।
चारित्र लेईने, मुक्ति गई सिद्ध होय ।। १०२ ।।
चौबीसे जिननी, बड़ी शिष्यणी चौबीस ।
सती मुक्ति पहुंच्या, पूरी मन जगीश ।। १०३ ।।
चौबीसे जिननां, सर्व साधवी सार ।
अड़तालीस लाख ने, आठ से सित्तर हजार। १०४।
चेडा नी पुत्री, राखी धर्म सुं प्रीत ।
राजीमती विजया, मृगावती सुविनीत ।। १०५ ।।
पद्मावती मयणरेहा, द्रौपदी दमयन्ती सीत ।
इत्यादिक सतियां, गई जमारो जीत ।। १०६ ।।

चौबीसे जिनना, साधु साधवी सार ।
गया मोक्ष देवलोके, हृदय राखो धार ।। १०७ ।।
इण अढ़ाई द्वीप मां, घरड़ा तपसी बाल ।
शुद्ध पंच महाव्रत धारी, नमो नमो त्रिकाल। १०८।
इण जतियों सतियों ना, लीजे नित्य प्रति नाम ।
शुद्ध मन थी ध्यावो, एह तिरण नो ठाम ।। १०९ ।।
इण जतियों सतियों शुं, राखो उज्ज्वल भाव ।
इम कहे ऋषि जयमल, एह तिरणो नो दाव। ११०।
संवत अठारह ने, वर्ष साते सिरदार ।
गढ़ जालोर माँही, एह कह्यो अधिकार ।। १११ ।।

।। इति बड़ी साधु वन्दना ।।

महात्मा जी याद आवे

हे महामना, हे उत्कृष्ट साधक
वैराग्यवंत क्षमावीर
शान्त प्रशान्त धीर गंभीर
गौरव इस धरा के मुनीवर
क्यों इतनी जल्दी रुठ गये?
समर्थ शिष्य लाडले चम्पक के
महात्माजी तुम विरले थे
तुमसे रोशन था जिनशासन
कलयुग में भी दिखा गये तुम
महावीर युग का अनुशासन
गुरु समर्पित तेरा जीवन
आगमों का किया गहन अनुशीलन
वाणी में जादु
प्रखर था चिन्तन
मोहित कर देते हर जन का मन
अविचल रहे साधना पथ पर
आये कैसे भी कष्ट दुष्कर
ध्यानावस्था में लीन थे गुरुवर
छोड़ी जब देह ये नश्वर
महकेगी खुशबु तेरी हर पल
जिनशासन के ओ रखवारे
वसुंधरा सूनी हुई तुम बिन
ओ ज्ञान गच्छ के चमकते सितारे

– उत्तम टाटिया, जबलपुर

लघु साधु वन्दना

साधुजी ने वंदना नित नित कीजे, प्रातः उगंते सूर रे प्राणी ।
नीच गति मां ते नहीं जावे, पावे ऋद्धि भरपूर रे प्राणी। साधु.।
मोटा ते पंच महाव्रत पाले, छह कायारा प्रतिपाल रे प्राणी ।
भ्रमर भिक्षा मुनि सूझती लेवे, दोष बियालीस टाल रे प्राणी। साधु.।
ऋद्धि सम्पदा मुनि कारमी जाणी, दीधी संसार ने पूठ रे प्राणी ।
एवा पुरुषां री सेवा करता, आठ करम जाय टूट रे प्राणी। साधु.।
एक एक मुनिवर रसना त्यागी, एक एक ज्ञान भण्डार रे प्राणी ।
एक एक मुनिवर वैयावच वैरागी, जेना गुणानो नावे पार रे प्राणी
। साधु.।
गुण सत्तावीस करीने दीपे, जीत्या परीसह बावीस रे प्राणी।
बावन तो अनाचार जो टाले, तेने नमावुं मारूँ शीश रे प्राणी ।साधु.।
जहाज समान ते संत मुनीश्वर, भव्य जीव बैठे आय रे प्राणी
पर उपकारी मुनि दाम न मांगे देवे मुक्ति पहुंचाय रे प्राणी। साधु.।
इण चरणे जीव साता पावे, पावे ते लीलविलास रे प्राणी ।
जन्म जरा ने मरण मिटावे, नावे फरी गर्भावास रे प्राणी ।साधु.।
एक वचन श्री सतगुरु केरो, जो पैठे दिल मांय रे प्राणी ।
नरक निगोद माँ ते नहीं जावे, एम कहे जिनराय रे प्राणी ।साधु.।
प्रातः उठी ने उत्तम प्राणी, सुणे साधुजी रो व्याख्यान रे प्राणी
एहवा पुरुषां री रेवा करताँ, पावे अमर विमान रे प्राणी। साधु.।
संवत अठार ने वर्ष अड़तीसे, बूसी गाँव चौमास रे प्राणी ।
मुनि आसकरणजी इण पर जंपे, हूं तो उत्तम साधाँ रो दास रे प्राणी ।साधु.।

पुच्छिंसु णं (वीरत्थुई)

पुच्छिंसु णं समणा माहणा य,
अगारिणो या परतित्थिया य।
से केइ णेगंतहियधम्ममाहु,
अणेलिसं साहु समिक्खयाए ॥ १ ॥
कहं च णाणं कहं दंसणं से,
सीलं कहं णायसुयस्स आसी ।
जाणासि णं भिक्खु जहातहेणं,
अहासुयं बूहि जहा णिसंतं॥ २॥
खेयण्णए से कुसले महेसी,
अणंतणाणी य अणंतदंसी ।
जसंसिणो चक्खुपहे ठियस्स,
जाणाहि धम्मं च धिइं च पेहि॥ ३॥
उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु,
तसा य जे थावर जे य पाणा ।
से णिच्चणिच्चेहि समिक्ख पण्णे,
दीवे व धम्मं समियं उदाहु ॥
से सव्वदंसी अभिभूयणाणी,
णिरामगंधे धिइमं ठियप्पा ।
अणुत्तरे सव्वजगंसि विज्जं,
गंथा अतीते अभए अणाऊ ॥ ५ ॥
से भूइपण्णे अणिएयचारी,
ओहंतरे धीरे अणंतचक्खू ।

अणुत्तरं तप्पइ सूरिए वा,
वइरोयणिंदे व तमं पगासे ॥ ६ ॥
अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं,
णेया मुणी कासव आसुपण्णे ।
इंदे व देवाण महाणुभावे,
सहस्सणेया दिवि णं विसिट्ठे ॥ ७ ॥
से पण्णया अक्खयसागरे वा,
महोदही वा वि अणंतपारे ।
अणाइले वा अकसाई मुक्के,
सक्के व देवाहिवई जुइमं ॥ ८ ॥
से वीरिएणं पडिपुण्णवीरिए,
सुदंसणे वा णगसव्वसेट्ठे ।
सुरालए वासी मुदागरे से,
विरायए णेगगुणोववेए ॥ ९ ॥
सयं सहस्साण उ जोयणाणं,
तिकंडगे पंडगवेजयंते ।
से जोयणे णवणवइसहस्से,
उद्धुस्सितो हेट्ठ सहस्समेगं ॥ १० ॥
पुट्ठे णभे चिट्ठइ भूमिवट्ठिए,
जं सूरिया अणुपरिवट्टयंति ।
से हेमवण्णे बहुणंदणे य,
जंसि रइं वेदयंति महिंदा ॥ ११ ॥
से पव्वए सद्दमहप्पगासे,
विरायइ कंचणमट्ठवण्णे ।

अणुत्तरे गिरिसु य पव्वदुग्गे,
गिरिवरे से जलिए व भोमे ॥ १२ ॥
महीइ मज्झंमि ठिए णगिंदे,
पण्णायते सूरिए सुद्धलेसे ।
एवं सिरीए उ स भूरिवण्णे,
मणोरमे जोयइ अच्चिमाली ॥ १३ ॥
सुदंसणस्सेव जसो गिरिस्स,
पवुच्चइ महतो पव्वयस्स ।
एतोवमे समणे णायपुत्ते,
जाइजसो दंसण-णाणसीले ॥ १४ ॥
गिरिवरे वा णिसहाऽऽययाणं,
रुयए व सेट्ठे वलयायताणं ।
तओवमे से जगभूइपण्णे,
मुणीण मज्झे तमुदाहु पण्णे ॥ १५ ॥
अणुत्तरं धम्ममुईरइत्ता,
अणुत्तरं झाणवरं झियाइं ।
सुसुक्कसुक्कं अपगंडसुक्कं,
संखिंदुएगंतवदातसुक्कं ॥ १६ ॥
अणुत्तरग्गं परमं महेसी,
असेसकम्मं स विसोहइत्ता ।
सिद्धिं गए साइमणंतपत्ते,
णाणेण सीलेण य दंसणेण ॥ १७ ॥
रुक्खेसु णाए जह सामली वा,
जंसि रइं वेदयंति सुवण्णा ।

वणेसु वा णंदणमाहु सेट्ठं,
णाणेण सीलेण य भूइपण्णे ॥ १८ ॥
थणियं व सद्दाण अणुत्तरे उ,
चंदो व ताराण महाणुभावे ।
गंधेसु वा चंदणमाहु सेट्ठं,
एवं मुणीणं अपडिण्णमाहु ॥ १९ ॥
जहा सयंभू उदहीण सेट्ठे,
णागेसु वा धरणिंदमाहु सेट्ठे ।
खोओदए वा रसवेजयंते,
तवोवहाणे मुणिवेजयंते ॥ २० ॥
हत्थीसु एरावणमाहु णाए,
सीहो मियाणं सलिलाण गंगा ।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवे,
णिव्वाणवादी णिह णायपुत्ते ॥ २१॥
जोहेसु णाए जह वीससेणे,
पुप्फेसु वा जह अरविंदमाहु ।
खत्तीण सेट्ठे जह दंतवक्के,
इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे ॥ २२ ॥
दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं,
सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति ।
तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं,
लोगुत्तमे समणे णायपुत्ते ॥ २३ ॥
ठिईण सेट्ठा लवसत्तमा वा,
सभा सुहम्मा व सभाण सेट्ठा ।

णिव्वाणसेट्ठा जह सव्वधम्मा,
ण णायपुत्ता परमत्थि णाणी ॥ २४॥
पुढोवमे धुणइ विगयगेहि,
ण सण्णिहिं कुव्वइ आसुपण्णे ।
तरिउं समुद्दं च महाभवोघं,
अभयंकरे वीर अणंतचक्खू ॥ २५ ॥
कोहं च माणं च तहेव मायं,
लोभं चउत्थं च अज्झत्थदोसा ।
एयाणि वंता अरहा महेसी,
ण कुव्वइ पाव ण कारवेइ ॥ २६ ॥
किरियाकिरियं वेणइयाणुवायं,
अण्णाणियाणं पडियच्च ठाणं ।
से सव्ववायं इइ वेयइत्ता,
उवट्ठिए संजमदीहरायं ॥ २७ ॥
से वारिया इत्थी सराइभत्तं,
उवहाणवं दुक्खखयट्ठयाए ।
लोगं विदित्ता आरं परं च,
सव्वं पभू वारिय सव्ववारं ॥ २८ ॥
सोच्चा य धम्मं अरहंतभासियं,
समाहियं अट्ठपदोवसुद्धं ।
तं सद्दहाणा य जणा अणाऊ,
इंदा व देवाहिव आगमिस्संति ॥ २९॥

॥ त्तिबेमि ॥

– सूत्रकृतांग सूत्र अध्ययन ६

॥ समाप्त ॥